

जैन संस्कार पाठ्यक्रम

भाग-9



अनुक्रम

क्रं.	विभाग	पृष्ठ संख्या	अंक 100
I	सूत्र विभाग 1. असंस्कृत नामक चौथा अध्ययन (कंठस्थ) 2. मोक्ष मार्ग (मूल, अर्थ)	06	35
		11	
II	तत्त्व विभाग 1. लघुदण्डक का थोकड़ा 2. प्रतिक्रमण (साधु) के 33 बोल	18	25
		50	
III	कथा विभाग 1. सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र 2. महासती सुभद्रा 3. महावीर के प्रथम गणधर 'इन्द्रभूति गौतम'	71	15
		80	
		87	
IV	काव्य विभाग 1. वे गुरु मेरे उर बसो 2. मेरा तार मिल गया	93	10
		95	
V	सामान्य ज्ञान विभाग 1. ज्ञान-फुलवारी 2. कालचक्र : एक अनुशीलन 3. आशातना 4. साधु संतों से बात करते समय ध्यान रखने योग्य बातें	96	15
		98	
		115	
		119	

सूत्र विभाग

उत्तराध्ययन सूत्र

असंस्कृत नामक चौथा अध्ययन

असंख्यं जीविय मा पमायए, जरोवणीयस्स हु नत्थि ताणं।
एवं वियाणाहि जणे पमत्ते, किन्नु विहिंसा अजया गहिंति ॥१॥

जीविय=यह जीवन, असंख्यं=संस्कार रहित है अर्थात् एक बार टूटने पर पुनः नहीं जोड़ा जा सकता अतएव, मा पमायए=प्रमाद मत करो, जरोवणीयस्स=वृद्धावस्था को प्राप्त हुए व्यक्ति की, ताणं=रक्षा करने वाला, हु=निश्चय ही, नत्थि=कोई नहीं है, एवं=इस प्रकार, वियाणाहि=समझो कि, विहिंसा=हिंसा करने वाले और, अजया=पापस्थान से निवृत्त न होने वाले, पमत्ते=प्रमादी, जणे=पुरुष अन्त समय में, किन्नु=किस की, गहिंति=शरण में जावेंगे॥१॥

जे पावकम्मेहिं धणं मणुस्सा, समाययंति अमइं गहाय।

पहाय ते पास पयट्टिए नरे, वेराणुबद्धा नरयं उवेंति॥२॥

कुबुद्धि एवं अज्ञान के वश होकर, जे=जो, मणुस्सा=मनुष्य, पावकम्मेहिं=पाप कर्मों से, धणं=धन को, अमइं=अमयं=अमृत के समान समझ कर, गहाय=ग्रहण करके, समाययंति=संचय करते हैं, पास पयट्टिए=स्त्री-पुत्र आदि के पाश में फँसे हुए और, वेराणुबद्धा=वैर-भाव की शृंखला में जकड़े हुए, ते=वे, नरे=मनुष्य अन्त समय में धन को यहीं, पहाय=छोड़कर, नरयं=नरक को, उवेंति=प्राप्त करते हैं। उस समय वह धन उनको शरणरूप नहीं होता॥२॥

तेणे जहा संधिमुहे गहिए, सकम्मुणा किच्चइ पावकारी।

एवं पया! पेच्चइहं च लोए, कडाण कम्माण न मुख्ख अत्थि॥३॥

जहा=जिस प्रकार, संधिमुहे=संधिमुख पर संध लगाते हुए, गहिए=पकड़ा हुआ, पावकारी=पापात्मा, तेणे=चोर, सकम्मुणा=अपने ही किये हुए कर्मों से, किच्चइ=दुःख पाता है, एवं=उसी प्रकार, पया=जीव, इहलोए=इस लोक, च=और, पेच्च=परलोक में अपने किये हुए अशुभ कर्मों से दुःख पाते हैं, क्योंकि फल भोगे बिना, कडाण=किये हुए, कम्माण=कर्मों से, मुख्ख=छुटकारा,

न अत्थि=नहीं होता।।3।।

संसारमावन्न परस्स अट्ठा, साहारणं जं च करेइ कम्मं।

कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले, न बंधवा बंधवयं उवेंति।।4।।

संसारं=संसार में, आवन्न=प्राप्त हुआ जीव, परस्स=दूसरे के, अट्ठा=लिये, च=और अपने लिए, जं=जो, साहारणं=साधारण, कम्मं=कर्म, करेइ=करता है, तस्स=उस, कम्मस्स=कर्म के, वेयकाले=फलभोग के समय, उ=निश्चय ही, ते=वे, बंधवा=बंधु आदि, बंधवयं=बंधुता का, न उवेंति=पालन नहीं करते हैं, अर्थात् फल भोगने के समय दुःख में हिस्सा नहीं बँटाते। यह जीव अपने किये हुए कर्मों को अकेला ही भोगता है।।4।।

वित्तेण ताणं ण लभे पमत्ते, इमम्मि लोए अदुवा परत्था।

दीवप्पणट्ठे व अणंतमोहे, नेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेवा।।5।।

पमत्ते=प्रमादी पुरुष, इमम्मि=इस, लोए=लोक में, अदुवा=अथवा, परत्था=परलोक में, वित्तेण=धन से ताणं=शरण, ण लभे=नहीं पाता है, दीवप्पणट्ठे व=जिसका दीपक बुझ गया है, ऐसे व्यक्ति के समान, अणंतमोहे=अनंत मोहवाला प्राणी, नेयाउयं=न्याय युक्त सम्यग् दर्शनादि रूप मुक्ति मार्ग को, दट्ठुं=देखकर भी, अदट्ठुमेव=न देखने वाला ही रहता है।।5।।

भावार्थ- जैसे दीपक लेकर गुफा में गया हुआ व्यक्ति दीपक के प्रकाश में वहाँ रखी हुई सभी वस्तुएँ देखता है, किन्तु प्रमादवश दीपक बुझ जाने पर उसका वस्तुओं को देखना और न देखना एक-सा हो जाता है। इसी प्रकार कर्मों का क्षयोपशम होने पर श्रुतज्ञान रूप भव दीपक के प्रकाश में आत्मा मोक्षमार्ग का दर्शन करता है, किन्तु धन आदि में आसक्ति के कारण वह पुनः कर्मों से आवृत्त हो जाता है, फलतः उसका मुक्तिमार्ग का दर्शन करना भी, न करने के समान ही हो जाता है। इस प्रकार धन स्वयं भी जीव का रक्षण नहीं कर सकता है और रक्षा करने वाले सम्यग् दर्शन आदि गुणों का भी घातक होता है।

सुत्तेसु यावी पडिबुद्ध-जीवी, न वीससे पंडिए आसुपन्ने।

घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं, भारंड-पक्खी व चरेऽप्पमत्ते।।6।।

सुत्तेसु=द्रव्य और भाव से सोये हुए लोगों के बीच, यावी=भी, पडिबुद्ध-जीवी=द्रव्य और भाव से जागकर संयम युक्त जीवन जीने वाला, जैन संस्कार पाठ्यक्रम भाग-9

आसुपन्ने=आशुप्रज्ञ, पंडिए=पंडित मुनि, प्रमादाचरण में, न वीससे=विश्वास नहीं करे, मुहुत्ता=काल, घोरा=घोर-अनुकम्पा रहित है और, सरीरं=शरीर, अबलं=निर्बल है अतएव, भारंड-पक्खी व=भारण्ड पक्षी के समान, अप्पमत्ते=प्रमाद-रहित होकर सावधानीपूर्वक, चरे=विचरे।।6।।

भावार्थ- आशुप्रज्ञ पंडित मुनि को चाहिए कि धर्म के प्रति असावधान एवं प्रमादी लोगों के बीच रहते हुए भी स्वयं सदा धर्म में तत्पर रहे और जन-साधारण के समान प्रमाद में कतई विश्वास नहीं करे। काल निर्दय है, उसके आगे शरीर सर्वथा अशक्त है। अतएव मुमुक्षु को चाहिए कि भारण्ड पक्षी के समान सदा प्रमाद-रहित होकर, शास्त्र-विहित अनुष्ठानों का सेवन करे।

चरे पयाइं परिसंक्रमाणो, जं किंचि पासं इह मन्नमाणो।।

लाभंतरे जीविय बूहइत्ता, पच्छा परिण्णाय मलावधंसी।।7।।

साधु को चाहिए कि मूलगुण आदि स्थानों में, पयाइं=पद-पद पर कहीं दोष न लग जाय इस प्रकार, परिसंक्रमाणो=शंका करता हुआ और, इह=इस लोक में, जं किंचि=गृहस्थ के साथ जो कुछ थोड़ा भी परिचय आदि है उसे, पासं=संयम के लिए पाश रूप, मन्नमाणो=मानता हुआ, चरे=विचरे, लाभंतरे=जब तक इस शरीर से विशेष ज्ञान-ध्यान-संयम-तप आदि गुणों का लाभ होता हो, तब तक, जीविय=जीवन की, बूहइत्ता=वृद्धि करे अर्थात् अन्न-पानी आदि द्वारा सार-सम्भाल करे, किन्तु पच्छा=बाद में लाभ न होने की अवस्था में, परिण्णाय=ज्ञपरिज्ञा द्वारा शरीर को धर्म साधन के अयोग्य समझ कर और प्रत्याख्यान परिज्ञा द्वारा आहार का त्याग कर, मलावधंसी=इस औदारिक शरीर का त्याग करे।।7।।

छंदं निरोहेण उवेइ मोक्खं, आसे जहा सिक्खिय-वम्मधारी।

पुव्वाइं वासाइं चरेऽप्पमत्तो, तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्खं ।।8।।

जहा=जिस प्रकार, सिक्खिय-वम्मधारी=सवार की अधीनता में रहकर शिक्षा पाया हुआ और शरीर पर कवच धारण करने वाला, आसे=घोड़ा, युद्ध में शत्रुओं से नहीं मारा जाता अपितु शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है, इसी प्रकार गुरु की अधीनता में रहकर शास्त्र-विहित आचार का सेवन करने वाला मुनि। छंदं निरोहेण=स्वच्छन्दता का त्याग करने से, मोक्खं=मोक्ष, उवेइ=प्राप्त करता है, अतएव गुरु की आज्ञा में रहता हुआ साधु, पुव्वाइं=पूर्व,

वासाइं=वर्षों तक, अप्पमत्तो=प्रमाद रहित होकर, चरे=विचरण करे, तम्हा=इस प्रकार करने से, मुणी=साधु, खिप्पं=शीघ्र ही, मोक्खं=मोक्ष को, उवेइ=प्राप्त करता है ॥8॥

स पुव्वमेवं न लभेज्ज पच्छा, एसोवमा सासयवाइयाणं।

विसीयइ सिद्धिले आउयम्मि, कालोवणीए सरीरस्स भेए॥९॥

जो व्यक्ति पहले से ही अप्रमत्त होकर ऊपर कहे अनुसार धर्माचरण नहीं करता और पिछली अवस्था के लिए छोड़ देता है, स=वह, पुव्वमेवं=पहले के समान, पच्छा=बाद में भी, न लभेज्ज=धर्माचरण न कर सकेगा। सासयवाइयाणं=शाश्वतवादी (निश्चयवादी) निरुपक्रम आयु वालों का 'बाद में धर्म का आचरण कर लेंगे,' एसोवमा=यह विचारना ठीक भी हो सकता है, किन्तु जल के बुलबुले के समान आयु वालों का यह विचारणा ठीक नहीं है, ऐसा व्यक्ति, आउयम्मि=आयु के, सिद्धिले=शिथिल होने पर तथा, कालोवणीए=मृत्यु काल निकट आने पर एवं, सरीरस्स=शरीर के, भेए=नाश होने के अवसर पर, विसीयइ=खेद करता है॥9॥

भावार्थ- आयु के परिमाण को जानने वाले निरुपक्रम आयु वाले लोग यदि कहें कि 'हम पीछे धर्माचरण कर लेंगे' तो उनका कहना ठीक भी हो सकता है, किन्तु जिनकी आयु का कोई निश्चय नहीं है, न जाने कब टूट जाए, वे यदि बाद में धर्माचरण की बात कहें, तो वे पहले भी नहीं करेंगे और पीछे भी न कर पायेंगे। अन्त में आयु समाप्त होने के समय मौत के निकट आने पर हाथ मलने के सिवाय उनका कोई चारा न होगा।

खिप्पं न सक्केइ विवेकमेउं, तम्हा समुट्ठाय पहाय कामे।

समेच्चलोयं समया महेसी, आयाणु-रक्खी चरेऽप्पमत्तो ॥१०॥

खिप्पं=शीघ्र ही, विवेकमेउं=विवेक प्राप्त करना और बाह्य संग एवं कषायों का त्याग करना, न सक्केइ=शक्य नहीं है, तम्हा=इसलिए, आयाणु-रक्खी=आत्मा की रक्षा करने वाला, महेसी=मोक्षार्थी मुनि, कामे=काम-भोगों का, पहाय=त्याग कर और, लोयं=लोक का स्वरूप, समया=समभाव पूर्वक, समेच्च=जान कर, अप्पमत्तो=प्रमाद रहित होकर, समुट्ठाय=सावधानी पूर्वक, चरे=विचरे॥10॥

मुहुं मुहुं मोहगुणे जयंतं, अणेग-रूवा समणं चरंतं।

फासा फुसंती असमंजसं च, न तेसु भिक्खू मणसा पउस्से॥११॥

जैन संस्कार पाठ्यक्रम भाग-9 ••••• 6

मोहगुणे=शब्दादि मोह गुणों को, मुहुं मुहुं=बारंबार निरन्तर, जयंतं=जीतते हुए और, चरंतं=संयम मार्ग में विचरते हुए, समणं=साधु को, अणेगरूवा=अनेक प्रकार के, फासा=स्पर्श शब्दादि विषय, असमंजसं=प्रतिकूल रूप से, फुसंती=स्पर्श करते हैं किन्तु, भिक्खू=साधु को चाहिए कि, तेसु=उन पर, मणसा=मन से भी, न पउस्से=द्वेष न करे॥11॥

मंदा य फासा बहुलोहणिज्जा, तहप्पगारेसु मणं ण कुज्जा।

रक्खेज्ज कोहं विणएज्ज माणं, मायं न सेवेज्ज, पयहेज्ज लोहं॥१२॥

फासा=स्पर्श शब्दादि विषय, मंदा=विवेक-बुद्धि को मन्द करने वाले हैं, य=और, बहुलोहणिज्जा=बहुत ही लुभाने वाले हैं। मुमुक्षु को, तहप्पगारेसु=इस प्रकार के आकर्षक शब्दादि विषयों में, मणं=मन, ण कुज्जा=न लगाना चाहिए-उनमें रागपूर्वक प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिए। उसे कोहं=क्रोध को, रक्खेज्ज=शान्त करना चाहिए। माणं=मान को, विणएज्ज=दूर करना चाहिए, मायं=माया का, न सेवेज्ज=सेवन नहीं करना चाहिए और, लोहं=लोभ का, पयहेज्ज=त्याग करना चाहिए॥12॥

जे संख्या तुच्छ परप्पवाई, ते पेज्ज-दोसाणुगया परज्झा।

एए अहम्मे त्ति दुगुंछमाणो, कंखे गुणे जाव सरीरभेए॥१३॥ त्ति बेमि॥

जे=जो, संख्या=संस्कृत यानी बाहरी दिखावे वाले, किन्तु अन्तःकरण की शुद्धि से रहित, तुच्छ=निस्सार वचन बोलने वाले, परप्पवाई=अन्य तीर्थियों के शास्त्रों की प्ररूपणा करने वाले वादी हैं, ते=वे, पेज्ज-दोसाणुगया=राग-द्वेष से युक्त हैं इस कारण, परज्झा=पराधीन हैं, एए=ये लोग, अहम्मे त्ति=अधर्म के हेतु हैं इस प्रकार जानकर उनकी, दुगुंछमाणो=जुगुप्सा करता हुआ मुमुक्षु, जाव=जब तक, सरीरभेए=शरीर का नाश न हो तब तक जीवन पर्यन्त, गुणे=सम्यग् दर्शनादि गुणों की, कंखे=इच्छा करे। त्ति बेमि=जैसा मैंने अपने धर्मोपदेशक धर्माचार्य से सुना है, वैसा मैं कहता हूँ।

॥ चौथा अध्ययन समाप्त ॥

7 ••••• जैन संस्कार पाठ्यक्रम भाग-9

2. मोक्ष मार्ग (मूल, अर्थ)

॥अट्टावीसइमं मोक्खमग्गीनामं अज्झयणं॥

मोक्ख-मग्ग-गइं तच्चं, सुणेह जिण-भासियं।
चउ-कारण-संजुत्तं, नाण-दंसण-लक्खणं॥1॥

[1] (ज्ञानादि) चार कारणों से युक्त ज्ञान-दर्शन लक्षणरूप, जिनभाषित, सत्य (-सम्यक्) मोक्षमार्ग की गति को सुनो।

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तथा।
एस मग्गो त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वर-दंसिहिं॥2॥

[2] वरदर्शी (-सत्य के सम्यक् द्रष्टा) जिनवरों ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र तथा तप; इस (चतुष्टय) को मोक्ष का मार्ग प्ररूपित किया है।

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तथा।
एयं मग्ग-मणुप्पत्ता, जीवा गच्छंति सोग्गइं॥3॥

[3] ज्ञान, दर्शन, चारित्र तथा तप, इस (मोक्ष-) मार्ग पर आरूढ़ जीव सद्गति को प्राप्त करते हैं।

ज्ञान और उसके प्रकार

तत्थ पंचविहं नाणं, सुयं आभिणिबोहियं।
ओहि-नाणं तु तइयं, मणनाणं च केवलं॥4॥

[4] उक्त चारों में से ज्ञान पाँच प्रकार का है- श्रुतज्ञान, आभिनिबोधिक (मतिज्ञान), तीसरा अवधिज्ञान एवं मनोज्ञान (मनःपर्यायज्ञान) और केवलज्ञान।

एयं पंचविहं नाणं, दव्वाण य गुणाण य।
पज्जवाणं च सव्वेसिं, नाणं नाणीहिं देसियं॥5॥

[5] ज्ञानी पुरुषों ने बताया कि यह पाँच प्रकार का ज्ञान सर्व द्रव्यों, गुणों और पर्यायों का अवबोधक-जानने वाला है।

द्रव्य, गुण और पर्याय का लक्षण

गुणाण-मासओ दव्वं, एग-दव्वस्सिया गुणा।
लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे॥6॥

[6] (जो) गुणों का आश्रय (आधार) है, (वह) द्रव्य है। (जो) केवल

द्रव्य के आश्रित रहते हैं, वे गुण कहलाते हैं और जो दोनों अर्थात् द्रव्य और गुणों के आश्रित हों उन्हें पर्याय (पर्यव) कहते हैं।

धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल-जंतवो।
एस लोगो त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वर-दंसिहिं॥7॥

[7] वरदर्शी जिनवरों में धर्म, अधर्म, आकाश, काल पुद्गल और जीव; यह (षड्द्रव्यात्मक) लोक कहा है।

धम्मो अहम्मो आगासं, दव्वं इक्किक्क-माहियं।
अणंताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गल-जंतवो॥8॥

[8] धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों द्रव्य (संख्या में) एक-एक कहे गये हैं। काल, पुद्गल और जीव, ये तीनों द्रव्य अनन्त-अनन्त हैं।

गइ-लक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाण-लक्खणो।
भायणं सव्व-दव्वाणं, नहं ओगाह-लक्खणं॥9॥

[9] गति (गतिहेतुता) धर्म (धर्मास्तिकाय) का लक्षण है। स्थिति (होने में हेतु होना) अधर्म (अधर्मास्तिकाय) का लक्षण है। सभी द्रव्यों का भाजन (आधार) आकाश है। वह अवगाह लक्षण वाला है।

वत्तणा-लक्खणो कालो, जीवो उवओग-लक्खणो।
नाणेणं दंसणेणं च, सुहेण य दुहेण य॥10॥

[10] वर्तना (परिवर्तन) काल का लक्षण है। उपयोग (चेतना-व्यापार) जीव का लक्षण है, ज्ञान (विशेषबोध), दर्शन (सामान्यबोध) और सुख तथा दुःख से पहचाना जाता है।

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तथा।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं॥11॥

[11] ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग- ये जीव के लक्षण हैं।

सदंधयार-उज्जोओ, पभा छायाऽऽतवो इ वा।
वण्ण-रस-गंध-फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं॥12॥

[12] शब्द अन्धकार, उद्योत, प्रभा, छाया और आतप तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श- ये पुद्गल के लक्षण हैं।

एगत्तं च पुहत्तं च, संखा संठाण-मेव य।

संजोगा य विभागा य, पञ्जवाणं तु लक्खणं॥13॥

[13] एकत्व, पृथक्त्व (विन्नत्व), संख्या, संस्थान (आकार), संयोग और विभाग— ये पर्यायों के लक्षण हैं।

नौ तत्त्व और सम्यक्त्व का लक्षण

जीवाऽजीवा य बंधो य, पुण्णं पावाऽऽसवो तथा।

संवरो निज्जरा मोक्खो, संतेए तहिया नव॥14॥

[14] जीव, अजीव, बंध, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष— ये नौ तत्त्व हैं।

तहियाणं तु भावाणं, सब्भावे उवएसणं।

भावेण सद्वहंतस्स, सम्मत्तं तं वियाहियं॥15॥

[15] इन तथ्यस्वरूप भावों के सद्भाव (अस्तित्व) के निरूपण में जो भावपूर्वक श्रद्धा है, उसे सम्यक्त्व कहते हैं।

दशविधरुचिरूप सम्यक्त्व के दस प्रकार

निसग्गुवएसरुई, आणारुई सुत्त-बीयरुई मेव।

अभिगम-वित्थारुई, किरिया-संखेव-धम्मरुई॥16॥

[16] (सम्यक्त्व—सम्यग्दर्शन के दस प्रकार हैं—) निसर्गरुचि, उपदेश्यारुचि, आज्ञारुचि, सूत्ररुचि, बीजरुचि, अभिगमरुचि, विस्ताररुचि, क्रियारुचि और धर्मरुचि।

भूयत्थेणाहिगया, जीवाऽजीवा य पुण्णपावं च।

सह सहसम्मुड्यासव-संवरो, रोएडु उ निसग्गो॥17॥

[17] (दूसरे के उपदेश के बिना ही) अपनी ही मति से जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव और संवर आदि तत्त्वों को यथार्थ रूप से ज्ञात कर श्रद्धा करना निसर्गरुचि सम्यक्त्व है।

जो जिणदिट्ठे भावे, चउव्विहे सद्वहाइ सयमेव।

एमेव नऽन्नह ति य, निसग्ग-रुइ ति नायव्वो॥18॥

[18] जो जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट (अथवा दृष्ट) (द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव इन) चार प्रकारों से (अथवा नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चार प्रकारों से) विशिष्ट भावों (—पदार्थों) के प्रति स्वयमेव (दूसरों के

उपदेश के बिना) यह ऐसा ही है, अन्यथा नहीं; ऐसी (स्वतःस्फूर्त) श्रद्धा (रुचि) रखता है, उसे निसर्गरुचि वाला जानना चाहिए।

एए चेव उ भावे, उवइट्ठे जो परेण सद्वहइ।

छउमत्थेण जिणेण व, उवएसरुइ-त्ति नायव्वो॥19॥

[19] जो अन्य—छद्मस्थ अथवा जिनेन्द्र—के द्वारा उपदेश प्राप्त कर, इन्हीं जीवादि भावों (पदार्थों) पर श्रद्धा रखता है, उसे उपदेशरुचि सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

रागो दोसो मोहो, अन्नाणं जस्स अवगयं होइ।

आणाए रोयंतो, सो खलु आणारुई नामं॥20॥

[20] जिस (महापुरुष—आप्तपुरुष) के राग, द्वेष, मोह और अज्ञान दूर हो गए हैं, उनकी आज्ञा से जो तत्त्वों पर रुचि रखता है, वह आज्ञारुचि है।

जो सुत्त-महिज्जंतो, सुएण ओगाहई उ सम्मत्तं।

अंगेण बाहिरैण व, सो सुत्तरुइ-त्ति नायव्वो॥21॥

[21] अंग (—प्रविष्ट) अथवा अंगबाह्य श्रुत में अवगाहन करता हुआ जो सम्यक्त्व को प्राप्त करता है, उसे सूत्ररुचि जानना चाहिए।

एणेण अणेगाइं पयाइं, जो पसरई उ सम्मत्तं।

उदए व्व तेल्लिबिंदू, सो बीय-रुइ-त्ति

नायव्वो॥22॥

[22] जैसे जल में तेल की बूंद फैल जाती है, वैसे ही जो सम्यक्त्व एक पद (तत्त्वबोध) अनेक पदों में फैलता है, उसे बीजरुचि समझना चाहिए।

सो होइ अभिगमरुई, सुयनाणं जेण अत्थओ दिट्ठं।

एक्कारस अंगाइं, पइण्णगं दिट्ठिवाओ य॥23॥

[23] जिसने ग्यारह अंग, प्रकीर्णक एवं दृष्टिवाद आदि श्रुतज्ञान को अर्थसहित अधिगत (दृष्ट या उपदेशप्राप्त) किया है वह अधिगमरुचि है।

दव्वाण सव्वभावा, सव्वपमाणेहिं जस्स उवलद्धा।

सव्वाहिं नय-विहीहिं, वित्थारुइ ति नायव्वो॥24॥

[24] समस्त प्रमाणों और सभी नयविधियों से द्रव्यों के सभी भाव जिसे उपलब्ध (ज्ञात) हो गए हैं, उसे विस्ताररुचि जानना चाहिए।

दंसण-नाण-चरित्ते, तव-विणए सच्च-समिइ-गुत्तीसु।

जो किरिया-भाव-रई, सो खलु किरियारई नामा।।25।।

[25] दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, विनय, सत्व, समिति और गुप्ति आदि क्रियाओं में जिसे भाव से रुचि है, वह क्रियारुचि है।

अणभिग्गहियकुदिट्ठी, संखेवरुइ त्ति होइ नायव्वो।

अविसारओ पवयणे, अणभिग्गहिओ य सेसेसु।।26।।

[26] जो निर्ग्रन्थ-प्रवचन में अकुशल है तथा अन्यान्य (-मिथ्या) प्रवचनों से भी अनभिज्ञ है; किन्तु कुदृष्टि का आग्रह न होने से अल्पबोध से ही जो तत्त्वश्रद्धा वाला है, उसे संक्षेपरुचि समझना चाहिए।

जो अत्थिकाय-धम्मं, सुय-धम्मं खलु चरित्त-धम्मं च।

सद्वहइ जिणाभिहियं, सो धम्मरुइ त्ति नायव्वो।।27।।

[27] जो व्यक्ति जिनेन्द्र-कथित, अस्तिकायधर्म (धर्मास्तिकायादि अस्तिकायों के गुण-स्वभावादि धर्म) में, श्रुतधर्म में और चारित्रधर्म में श्रद्धा करता है, उसे धर्मरुचि वाला समझना चाहिए।

सम्यक्त्व-श्रद्धा के स्थायित्व के तीन उपाय

परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वा वि।

वावन्न-कुदंसण-वज्जणा, य सम्मत्तसद्वहणा।।28।।

[28] परमार्थ का गाढ़ परिचय, परमार्थ के सम्यक् द्रष्टा पुरुषों की सेवा और व्यापन्नदर्शन (सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट) तथा कुदर्शन (मिथ्यादृष्टि) जनों (के संसर्ग) का वर्जन, यह सम्यक्त्व का श्रद्धान है, अर्थात् ऐसा करने से सम्यग्दर्शन में स्थिरता आती है।

सम्यग्दर्शन की महत्ता

नत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं, दंसणे उ भइयव्वं।

सम्मत्त-चरित्ताइं, जुगवं पुव्वं व सम्मत्तं।।29।।

[29] (सम्यक्) चारित्र सम्यग्दर्शन के बिना नहीं होता, किन्तु सम्यक्त्व चारित्र के बिना भी हो सकता है। सम्यक्त्व और चारित्र युगपत्-एक साथ भी होते हैं, (किन्तु) चारित्र से पूर्व सम्यक्त्व का होना आवश्यक है।

नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हंति चरणगुणा।

अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं।।30।।

[30] सम्यग्दर्शनरहित व्यक्ति को (सम्यक्) ज्ञान नहीं होता। (सम्यक्) ज्ञान के बिना चारित्र-गुण नहीं होता। चारित्र-गुण के बिना मोक्ष (कर्मक्षय) नहीं हो सकता और मोक्ष के बिना निर्वाण (अचल चिदानन्द) नहीं होता।

सम्यक्त्व के आठ अंग

निस्संकिय निक्कंखिय निव्वित्तिगिच्छा अमूढदिट्ठी य।

उववूह-थिरीकरणे, वच्छल्ल-पभावणे अट्ठ।।31।।

[31] निःकांता, निष्कांक्षा, निर्विकित्सा, अमूढदृष्टि, उपबृंहण, स्थिरीकरण, वात्सल्य और प्रभावना- ये आठ (सम्यक्त्व के अंग) हैं।

चारित्र : स्वरूप और प्रकार

सामाइयत्थ पढम, छेओवट्ठावणं भवे बीयं

परिहारविसुद्धीयं, सुहुमं तह संपरायं च।।32।।

[32] चारित्र के पाँच प्रकार हैं- पहला सामायिक, दूसरा छेदोपस्थापनीय, तीसरा परिहारविशुद्धि, चौथा सूक्ष्मसम्पराय और-

अकसाय-महक्खायं, छउमत्थस्स जिणस्स वा।

एयं चयरित्तकरं, चारित्तं होइ आहियं।।33।।

[33] पाँचवां यथाख्यातचारित्र है, जो सर्वथा कषायरहित होता है। वह छद्मस्थ और केवली-दोनों का होता है। यह पंचविध चारित्र कर्म के चय (संचय) को रिक्त (खाली) करता है, इसलिए यह चारित्र कहा गया है।

सम्यक् तप : भेद-प्रभेद

तवो य दुविहो वुत्तो, बाहिरऽब्भंतरो तहा।

बाहरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भंतरो तवो।।34।।

[34] तप दो प्रकार का कहा गया है-बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य तप छह प्रकार का है। इसी प्रकार आभ्यन्तर तप भी छह प्रकार का है।

मोक्ष प्राप्ति के लिए चारों की उपयोगिता

नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्वहे।

चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई।।35।।

[35] (आत्मा) ज्ञान से जीवादि भावों (पदार्थों) को जानता है, दर्शन से उन पर श्रद्धान करता है, चारित्र से (नवीन कर्मों के आश्रव का) निरोध करता है और तप से परिशुद्ध (पूर्वसंचित कर्मों का क्षय) होता है।

खवेत्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य।
सव्वदुक्ख-पहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो॥36॥

॥ त्ति बेमि॥

[36] सर्वदुःखों से मुक्त होने के लिए महिर्ष संयम और तप से पूर्वकर्मों का क्षय करके (मुक्ति को) प्राप्त करते हैं।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

॥मोक्खमग्गतीनामं अट्टवीसइमं अज्झयणं समत्तं॥28॥

तत्त्व विभाग

1. लघु दण्डक का थोकड़ा

श्रीमद् जीवाजीवाभिगम सूत्र की प्रथम प्रतिपत्ति इसका मुख्य आधार है। इसमें 24 वर्गणाओं का 25 द्वारों से विश्लेषण किया गया है—

25 द्वार[●]—

- | | | |
|---------------|-----------------|------------------------|
| 1. शरीर द्वार | 9. समुद्घात | 17. उपयोग |
| 2. अवगाहना | 10. संज्ञी | 18. आहार |
| 3. संहनन | 11. वेद | 19. उपपात |
| 4. संस्थान | 12. पर्याप्ति | 20. स्थिति |
| 5. कषाय | 13. दृष्टि | 21. समोहया असमोहया मरण |
| 6. संज्ञा | 14. दर्शन | 22. च्यवन |
| 7. लेश्या | 15 ज्ञान अज्ञान | 23. गति-आगति |
| 8. इन्द्रिय | 16. योग | 24. प्राण 25. योग |

गाथा— नेरइया असुराई, पुढवाई बेइन्दियादओ चेव।
पंचिन्दिय-तिरिय-नरा, वंतर-जोइसिस-वेमाणी॥१॥
संग्रहणी गाथाएं— श्री जीवाजीवभिगम सूत्र प्रथम प्रतिपत्ति
सरीरोगाहण-संघयण-संठाण-कसाय तह य हुंति
सन्नाओ लेसिंदिय-समुग्घाए सन्नीवेए य पज्जती॥१॥
दिट्ठी-दंसण-नाणे जोगुवओगे तहा किमाहारे।
उववाय ठिई समुग्घाय चवण-गइरागई च्चेव॥२॥
पाणे, जोगे॥

1. शरीर द्वार

जो प्रतिसमय जीर्ण-शीर्ण होता रहता है उसे शरीर कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं—1. औदारिक, 2. वैक्रिय, 3. आहारक, 4. तैजस, 5. कार्मण।

1. औदारिक शरीर— औदारिक वर्गणा के पुद्गलों से बने हुए शरीर को

● किसी भी वस्तु (स्वरूप) को समझाने के प्रकार को द्वार कहते हैं।

औदारिक शरीर कहते हैं अथवा उदार अर्थात् स्थूल पुद्गलों से बने हुए शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।

2. **वैक्रिय शरीर**- वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलों से बने हुए शरीर को वैक्रिय शरीर कहते हैं अथवा वैक्रिय = विविध या विशिष्ट प्रकार की क्रिया। जिस शरीर से विविध या विशिष्ट प्रकार (छोटा-बड़ा, एक-अनेक, दृश्य-अदृश्य आदि रूप) की क्रियाएँ की जा सकती हैं, उसे वैक्रिय शरीर कहते हैं।

3. **आहारक शरीर**- आहारक वर्गणा के पुद्गलों से बने हुए शरीर को आहारक शरीर कहते हैं। आहारक लब्धिधारी मुनिराज 4 कारणों से आहारक शरीर निर्माण करते हैं-

1. तीर्थकरों की ऋद्धि दर्शन 2. जीवदया 3. संशय निवारण 4. सूक्ष्म पदार्थों में अवगाहन (सूक्ष्म पदार्थों को समझने के लिए)।

4. **तैजस शरीर**- तैजस वर्गणा के पुद्गलों से बने हुए शरीर को तैजस शरीर कहते हैं।

5. **कर्मण शरीर**- कर्मण वर्गणा के पुद्गलों से बने हुए शरीर को कर्मण शरीर कहते हैं। कर्मों के समुदाय को ही कर्मण शरीर कहते हैं।

1. **नैरयिक और देव में शरीर पावे** 3-वैक्रिय, तैजस और कर्मण।

2. **चार स्थावर**- (पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वनस्पतिकायिक) और **असन्नी मनुष्य** इन पाँचों में शरीर पावे 3-औदारिक, तैजस और कर्मण। **वायुकायिक** में शरीर पावे 4-औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कर्मण।

3. **तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च** में शरीर पावे 3-औदारिक, तैजस और कर्मण।

4. **सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च** में शरीर पावे 4- औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कर्मण।

5. **कर्मभूमिज मनुष्य** • में शरीर पावे 5- 1. औदारिक, 2. वैक्रिय, 3. आहारक, 4. तैजस और 5. कर्मण।

6. **युगलिक मनुष्यों[†] के भेद**- 5 हेमवत, 5 हैरण्यवत, 5 हरिवर्ष,

• जहाँ-जहाँ कर्मभूमिज मनुष्य कहा है वहाँ संख्येय वर्ष वाले मनुष्य समझना।

† जहाँ-जहाँ युगलिक मनुष्य कहा है वहाँ असंख्येय वर्ष वाले मनुष्य समझना।

5 रम्यक्वर्ष, 5 देवकुरू, 5 उत्तरकुरू और 56 अन्तर्द्वीपज में शरीर पावे तीन- 1. औदारिक, 2. तैजस और 3. कर्मण।

7. **सिद्ध भगवान्** के शरीर नहीं, अशरीरी है।

2. अवगाहना द्वार

जीव के शरीर की ऊँचाई (कहीं-कहीं लम्बाई) को **अवगाहना** कहते हैं।

1. **पहली पृथ्वी के नैर. से सातवीं पृथ्वी के नैर. तक** भवधारणीय शरीर की अवगाहना-

जघन्य - अंगुल का असंख्येयतम भाग

उत्कृष्ट अव. -

पहली पृ. के नैर. - पौने आठ (7¾) धनुष 6 अंगुल▼

दूसरी पृ. के नैर. - साढ़े पंद्रह (15½) धनुष 12 अंगुल

तीसरी पृ. के नैर. - सवा इकतीस (31¼) धनुष

चौथी पृ. के नैर. - साढ़े बासठ (62½) धनुष

पाँचवीं पृ. के नैर. - सवा सौ (125) धनुष

छठी पृ. के नैर. - दो सौ पचास (250) धनुष

सातवीं पृ. के नैर. - पाँच सौ (500) धनुष

नैरयिक उत्तर वैक्रिय करे तो **जघन्य** अंगुल के संख्येयतम भाग **उत्कृष्ट** अपनी-अपनी अवगाहना से दुगुनी। जैसे-सातवीं पृथ्वी के नैरयिक की भवधारणीय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना 500 धनुष की है और उत्तर वैक्रिय करे तो 1000 धनुष की कर सकता है।

भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा पहले, दूसरे देवलोक के देवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्येयतम भाग, उत्कृष्ट 7 हाथ की।

आगे सभी देवों की ज. अंगुल के असंख्येयतम भाग तथा उत्कृष्ट इस प्रकार है-

तीसरे, चौथे देव. के देव - 6 हाथ

▼ 24 अंगुल=1 हाथ, 4 हाथ=1 धनुष, 2000 धनुष=1 गाऊ (कोस), 4 गाऊ=1 योजन।

पाँचवें, छठे देव. के देव	-	5 हाथ
सातवें, आठवें देव. के देव	-	4 हाथ
नौवें से बारहवें देव. के देव	-	3 हाथ
नव ग्रैवेयक के देव	-	2 हाथ
पाँच अनुत्तर विमान के देव	-	1 हाथ

उत्तर वैक्रिय करे तो जघन्य अंगुल के संख्येयतम भाग, उत्कृष्ट बारहवें देवलोक तक एक लाख योजन की। नव ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देवों में वैक्रिय करने की शक्ति तो होती है किन्तु करते नहीं हैं।

2. **पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और असन्नी मनुष्य**-इन पाँचों की ज. अंगुल के असंख्येयतम भाग और उत्कृष्ट भी अंगुल के असंख्येयतम भाग। किन्तु जघन्य से उत्कृष्ट असंख्येय गुणा अधिक होती है।

वनस्पतिकायिक की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्येयतम भाग, उत्कृष्ट 1000 योजन झाड़ेरी, कमलनाल की अपेक्षा। वायुकायिक के उत्तर वैक्रिय शरीर की अवगाहना ज. और उ. अंगुल के असंख्येयतम भाग।

3. **तीन विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) व असन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च के पाँचों भेद की अवगाहना-**

जघन्य	-	अंगुल के असंख्येयतम भाग
उत्कृष्ट	-	द्वीन्द्रिय-12 योजन। त्रीन्द्रिय- 3 गाऊ। चतुरिन्द्रिय- 4 गाऊ।

असन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च के पाँच भेद-

जलचर, चतुष्पद स्थलचर, उरपरिसर्प स्थलचर, भुजपरिसर्प स्थलचर, खेचर

जलचर	-	1000 योजन	यो
चतुष्पद स्थलचर	-	पृथक्त्व गाऊ।	गा
उरपरिसर्प स्थलचर	-	पृथक्त्व योजन।	यो
भुजपरिसर्प स्थलचर	-	पृथक्त्व धनुष।	ध
खेचर	-	पृथक्त्व धनुष।	ध

4. **सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च के पाँच भेद-**

जलचर, चतुष्पद स्थलचर, उरपरिसर्प स्थलचर, भुजपरिसर्प स्थलचर, खेचर इन पाँचों की जघन्य अवगाहना-अंगुल के असंख्येयतम भाग

उत्कृष्ट :-

जलचर	-	1000 योजन।	यो
चतुष्पद स्थलचर	-	6 गाऊ।	गा
उरपरिसर्प स्थलचर	-	1000 योजन।	यो
भुजपरिसर्प स्थलचर	-	पृथक्त्व गाऊ।	गा
खेचर	-	पृथक्त्व धनुष।	ध

सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च वैक्रिय शरीर करे तो ज. अंगुल के संख्येयतम भाग उत्कृष्ट पृथक्त्व 100 योजन।

5. **कर्मभूमिज मनुष्यों की अवगाहना**-ज. अंगुल के असंख्येयतम भाग उत्कृष्ट 3 गाऊ। भरत व ऐरवत क्षेत्र के काल के अनुसार अवसर्पिणी काल में गर्भज मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहना इस प्रकार है -

पहले आरे के प्रारम्भ में	-	3 गाऊ।
पहला पूर्ण होते और दूसरे के प्रारम्भ में	-	2 गाऊ।
दूसरा पूर्ण होते और तीसरे के प्रारम्भ में	-	1 गाऊ।
तीसरा पूर्ण होते और चौथे के प्रारम्भ में	-	500 धनुष
चौथा पूर्ण होते और पाँचवें के प्रारम्भ में	-	7 हाथ
पाँचवाँ पूर्ण होते और छठे के प्रारम्भ में	-	2 हाथ▼
छठा आरा पूर्ण होते	-	1 हाथ

यह उत्कृष्ट अवगाहना है। जघन्य अवगाहना उत्पत्ति के समय अंगुल के असंख्येयतम भाग है।

नोट:- पृथक्त्व का अर्थ 2 से 9 तक नहीं समझना चाहिए किन्तु उससे भी ज्यादा है अर्थात् 'अनेक' अर्थ उपयुक्त हैं। जैसे असन्नी पंचे. ति. के उरपरिसर्प की अवगाहना उत्कृष्ट 12 यो. की कही गई है यदि पृथक्त्व का अर्थ 2 से 9 तक ही लेते हैं तो उरपरिसर्प की अवगाहना संगत नहीं बैठती।

▼जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वितीय वक्षस्कार एवं जैन धर्म का मौलिक इतिहास, भाग 1 (तृतीय संस्करण) पृष्ठ 685 के आधार पर।

उत्सर्पिणी काल की अवगाहना का क्रम इससे उल्टा होता है महाविदेह क्षेत्र के मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहना 500 धनुष की है। यदि मनुष्य वैक्रिय करे तो अवगाहना जघन्य अंगुल के संख्येयतम भाग और उत्कृष्ट एक लाख योजन झाड़ेरी।

6. युगलिक मनुष्य की अवगाहना-

जघन्य अंगुल के असंख्येयतम भाग

हेमवत हैरण्यवत के मनु. की अव. - 1 गाऊ

हरिवर्ष रम्यक्वर्ष के मनु. की अव. - 2 गाऊ

देवकुरु उत्तरकुरु के मनु. की अव. - 3 गाऊ

56 अन्तर्द्वीपज के मनु. की अव. - 800 धनुष

7. सिद्ध भगवान की अवगाहना-आत्मप्रदेशों की अवगाहना-

जघन्य-1 हाथ 8 अंगुल (दो हाथ वाले मनुष्य की अपेक्षा)

मध्यम-4 हाथ 16 अंगुल (7 हाथ वाले मनु. की अपेक्षा)

उत्कृष्ट-333 धनुष 32 अंगुल (500 धनुष वाले मनु. की अपेक्षा)।

3. संहनन द्वार

औदारिक शरीर के पुद्गलों का किसी निश्चित दृढ़ता के साथ एकत्रित रहना **संहनन** है। इसके छह भेद हैं-

1. **वज्रऋषभ-नाराच संहनन**-वज्र=कील, ऋषभ=वेष्टन पट्ट (लपेटने का पट्टा), नाराच=दोनों ओर से मर्कट बंध, संहनन=दृढ़ता। दो हड्डियों को दोनों ओर से मर्कट बंध द्वारा जोड़कर, उन पर पट्ट की आकृति वाली हड्डी का वेष्टन करके (चारों ओर से लपेट करके), वज्र से उन्हें भेद कर जोड़ दिया जाए- इस प्रकार की दृढ़ता को वज्रऋषभनाराच संहनन कहते हैं।

ज्ञातव्य- वज्रऋषभनाराच आदि संहनन वाले जीवों की हड्डियाँ उपर्युक्त प्रकार से होती हैं- ऐसा नहीं समझना चाहिए। उपर्युक्त प्रकार की दृढ़ता के समान जीव का शरीर दृढ़ होता है- ऐसा समझना चाहिए।

2. **ऋषभ-नाराच संहनन**- दो हड्डियों को दोनों ओर से मर्कट बंध द्वारा जोड़कर, उन पर पट्ट की आकृति वाली हड्डी का वेष्टन कर दिया जाए- इस

प्रकार की दृढ़ता को ऋषभनाराच संहनन कहते हैं।

3. **नाराच-संहनन**-दो हड्डियों को दोनों ओर से मर्कट बंध द्वारा जोड़ दिया जाए-इस प्रकार की दृढ़ता को नाराच संहनन कहते हैं।

4. **अर्द्धनाराच-संहनन**- दो हड्डियों को एक ओर से मर्कट बंध द्वारा जोड़कर, दूसरी ओर से कील द्वारा भेद कर जोड़ दिया जाए- इस प्रकार की दृढ़ता को अर्द्धनाराच संहनन कहते हैं।

5. **कीलिका-संहनन**- दो हड्डियों को कील द्वारा जोड़ दिया जाए- इस प्रकार की दृढ़ता को कीलिका संहनन कहते हैं।

6. **सेवार्त्त-संहनन**- दो हड्डियाँ पर्यन्त भाग (समाप्ति स्थान) में एक दूसरे को स्पर्श करती हुई रहती हों- इस प्रकार की दृढ़ता को सेवार्त्त संहनन कहते हैं। वर्तमान में भरत क्षेत्र में उत्पन्न मनुष्यों में सेवार्त्त संहनन ही पाया जाता है।

1. नैरयिक और देव में : संहनन नहीं पावे।
: नैरयिक में अशुभ पुद्गल परिणमे और देवों में शुभ पुद्गल परिणमे।
2. पाँच स्थावर और असन्नी मनुष्य : एक-सेवार्त्त संहनन
3. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी : एक-सेवार्त्त संहनन
पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च
4. सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च : छह ही संहनन
5. कर्मभूमिज मनुष्य : छह ही संहनन
6. युगलिक मनुष्य : एक-वज्र ऋषभ नाराच संहनन
7. सिद्ध भगवान : संहनन नहीं।

4. संस्थान द्वार

आकृति को संस्थान कहते हैं। इस प्रकरण में यहाँ जीव संबंधी संस्थान का वर्णन है।

1. **समचतुरस्र संस्थान** - सम = समान, शरीर के लक्षण के अनुसार प्रमाणोपेत; चतुर् = चार; अस्र = कोण (यहाँ अस्र शब्द से चारों दिशाओं के सम्पूर्ण

शरीर-अवयवों को ग्रहण किया गया है)। जिस शरीर में सभी अवयव उत्तम (शास्त्रोक्त) प्रमाण युक्त हों, उस शरीर की आकृति को समचतुरस्र संस्थान कहते हैं।

2. **न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान**-न्यग्रोध=वट वृक्ष (ऊपर से विशाल, नीचे से हीन), परिमण्डल = घेरा, विस्तार। जिस शरीर में ऊपर के सभी अवयव (जैसे-सिर, गर्दन आदि) उत्तम प्रमाण युक्त हों, परन्तु नीचे के अवयव (जैसे-पैर, ऊरु आदि) हीन हों, उस शरीर की आकृति को न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान कहते हैं। जैसे- जिस मनुष्य के नाभि के ऊपर का भाग उत्तम प्रमाण युक्त एवं नीचे का भाग हीन हो, वह मनुष्य न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान युक्त है।

3. **सादि संस्थान**- सादि = शाल्मली वृक्ष (इस वृक्ष का स्कंध (नीचे का भाग) मोटा होता है, परन्तु स्कंध के अनुरूप ऊपर का भाग विशाल नहीं होता) जिस शरीर में नीचे के सभी अवयव (जैसे-पैर, ऊरु आदि) उत्तम प्रमाण युक्त हों, परन्तु ऊपर के अवयव (जैसे-सिर, गर्दन आदि) हीन हों, उस शरीर की आकृति को सादि संस्थान कहते हैं। जैसे- जिस मनुष्य के नाभि के नीचे का भाग उत्तम प्रमाण युक्त एवं ऊपर का भाग हीन हो, वह मनुष्य सादि संस्थान युक्त है।

4. **कुब्ज संस्थान**- जिस शरीर में मध्य के सभी अवयव (जैसे-पेट, पीठ आदि) उत्तम प्रमाण युक्त हों, परन्तु शेष अवयव हीन हों, उस शरीर की आकृति को कुब्ज संस्थान कहते हैं। जैसे- जिस मनुष्य के पेट, छाती, पीठ आदि अवयव उत्तम प्रमाण युक्त एवं सिर, गर्दन, हाथ, पैर आदि अवयव हीन हों, वह मनुष्य कुब्ज संस्थान युक्त है।

5. **वामन संस्थान**- जिस शरीर में मध्य के अवयव (जैसे-पेट, पीठ आदि) हीन हों, परन्तु शेष सभी अवयव उत्तम प्रमाण युक्त हों, उस शरीर की आकृति को वामन संस्थान कहते हैं। जैसे- जिस मनुष्य के पेट, छाती, पीठ आदि अवयव हीन एवं सिर, गर्दन, हाथ, पैर आदि अवयव उत्तम प्रमाण युक्त हों, वह मनुष्य वामन संस्थान युक्त है।

6. **हुण्ड संस्थान**- जिस शरीर में प्रायः सभी अवयव प्रमाण के अनुरूप न हों, उस शरीर की आकृति को हुण्ड संस्थान कहते हैं। वर्तमान में इस भरत क्षेत्र में उत्पन्न मनुष्यों में हुण्ड संस्थान ही पाया जाता है।

1. नैरयिक के भवधारणीय शरीर

व उत्तर वैक्रिय शरीर में	:	एक-हुण्ड संस्थान
देवों के भवधारणीय शरीर में	:	एक-समचतुरस्र संस्थान
और उत्तर वैक्रिय करे तो	:	विविध

2. पाँच स्थावर व असन्नी मनुष्य में : एक-हुण्ड संस्थान
3. तीन विकलेन्द्रिय व असन्नी : एक-हुण्ड संस्थान
पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च में
4. सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च में : छः ही संस्थान
5. कर्मभूमिज मनुष्य में : छः ही संस्थान
6. युगलिक मनुष्य में : एक-समचतुरस्र संस्थान
7. सिद्ध भगवान में : संस्थान नहीं पावे।

5. कषाय द्वार

संसार में भटकाने वाले भावों को **कषाय** कहते हैं। इसके चार भेद हैं- क्रोध, मान, माया, लोभा।

- 1-6. सभी जीवों में : चारों ही कषाय
- नोट:-** कर्मभूमिज मनुष्य : अकषायी भी होते हैं। (11वें गुण. से 14वें गुण. तक)
7. सिद्ध भगवान : अकषायी हैं।

6. संज्ञा द्वार

आहार आदि के संबंध में विशिष्ट प्रकार की लालसा आदि को एवं संवेदनाओं को संज्ञा कहते हैं। इसके चार भेद हैं-

1. आहार-संज्ञा 2. भय-संज्ञा 3. मैथुन-संज्ञा 4. परिग्रह-संज्ञा।
- 1-6. सभी जीवों (24 वर्गणाओं) में : चारों ही संज्ञा
- नोट :-** कर्मभूमिज मनुष्य : नोसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं। (7वें गुण. से 14वें गुण. तक)
7. सिद्ध भगवान में : संज्ञा नहीं, नोसंज्ञोपयुक्त हैं।

7. लेश्या द्वार

आत्मा के शुभाशुभ भावों को लेश्या कहते हैं। इसके छह भेद हैं-

1. कृष्ण लेश्या, 2. नील लेश्या, 3. कापोत लेश्या 4. तेजो लेश्या, 5. पद्म लेश्या, 6. शुक्ल लेश्या।

- | | |
|--|---|
| 1. पहली व दूसरी पृथ्वी के नैरयिक में | : एक-कापोत लेश्या |
| तीसरी पृथ्वी के नैरयिक में | : दो-कापोत व नील लेश्या |
| चौथी पृथ्वी के नैरयिक में | : एक-नील लेश्या |
| पाँचवीं पृथ्वी के नैरयिक में | : दो-नील और कृष्ण लेश्या |
| छठी पृथ्वी के नैरयिक में | : एक-कृष्ण लेश्या |
| सातवीं पृथ्वी के नैरयिक में | : एक-महाकृष्ण लेश्या |
| भवनवासी व वाणव्यंतर देवों में | : चार-कृष्ण, नील, कापोत, तेजो |
| ज्योतिष्क व पहले दूसरे देव. में | : एक-तेजो लेश्या |
| तीसरे, चौथे, पाँचवें देवलोक में | : एक-पद्म लेश्या |
| छठे देवलोक से नवग्रैवेयक तक | : एक-शुक्ल लेश्या |
| पाँच अनुत्तर विमान में | : एक-परम शुक्ल लेश्या |
| 2. पृथ्वीकायिक, अप्कायिक,
वनस्पतिकायिक में | : चार (प्रथम चार) |
| तेज., वायु. व असन्नी मनुष्य में | : तीन-कृष्ण, नील, कापोत |
| 3. तीन विकलेन्द्रिय व असन्नी
पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च में | : तीन- कृष्ण, नील व कापोत |
| 4. सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च में | : छहों लेश्या |
| 5. कर्मभूमिज मनुष्य में | : छहों लेश्या व अलेशी भी।
(14वें गुण. में) |
| 6. युगलिक मनुष्य में | : चार-(प्रथम चार) |
| 7. सिद्ध भगवान में | : लेश्या नहीं, अलेशी हैं। |

8. इन्द्रिय द्वार

जिसके माध्यम से आत्मा शब्द, रूप, गंध, रस व स्पर्श का बोध करे, उसे **इन्द्रिय** कहते हैं।

इसके पाँच भेद हैं- 1. श्रोतेन्द्रिय, 2. चक्षुरिन्द्रिय 3. घ्राणेन्द्रिय,
4. जिह्वेन्द्रिय 5. स्पर्शेन्द्रिय।

- | | |
|--|---|
| 1. नैरयिक व देवों में | : 5 इन्द्रिय |
| 2. पाँच स्थावर में
असन्नी मनुष्य में | : 1-स्पर्शेन्द्रिय
: 5 इन्द्रिय |
| 3. द्वीन्द्रिय में
त्रीन्द्रिय में
चतुरिन्द्रिय में
असन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च में | : 2-जिह्वेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय
: 3-घ्राणे., जिह्वेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय
: 4-चक्षु., घ्राणे., जिह्वे., स्पर्शे.
: 5 इन्द्रिय |
| 4. सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च में | : 5 इन्द्रिय |
| 5. कर्मभूमिज मनुष्य में | : 5 इन्द्रिय और अनिन्द्रिय भी
(13वें, 14वें गुण. में) |
| 6. युगलिक मनुष्य में | : 5 इन्द्रिय |
| 7. सिद्ध भगवान | : अनिन्द्रिय होते हैं। |

9. समुद्घात द्वार

वेदना आदि प्रसंगों पर आत्मा द्वारा मूल शरीर को छोड़े बिना कुछ आत्म-प्रदेशों को प्रबलता से शरीर द्वारा व्याप्त क्षेत्र से बाहर निकालना **समुद्घात** कहलाता है। इसके सात भेद हैं-

1. **वेदनीय समुद्घात**- साता या असाता वेदना के फलस्वरूप होने वाला समुद्घात **वेदना समुद्घात** कहलाता है।
2. **कषाय समुद्घात**- क्रोधादि कषायों के उदय के फलस्वरूप होने वाला समुद्घात **कषाय समुद्घात** कहलाता है।
3. **मारणांतिक समुद्घात**- मृत्यु से अन्तर्मुहूर्त पूर्व उत्पत्ति के स्थान तक लंबा (शरीर प्रमाण चौड़ा एवं मोटा) आत्मप्रदेशों का दंड निकालना,

‘मारणांतिक समुद्घात’ कहलाता है।

4. वैक्रिय समुद्घात-नैरयिकों एवं देवों द्वारा नवीन वैक्रिय रूप बनाने हेतु तथा तिर्यचों एवं मनुष्यों द्वारा किसी भी वैक्रिय रूप का निर्माण करने हेतु किया जाने वाला समुद्घात वैक्रिय समुद्घात कहलाता है।

5. तैजस समुद्घात- तेजो लेश्या (उष्णता युक्त विशेष प्रकार के पुद्गल) को किसी पर प्रक्षिप्त करने (छोड़ने) हेतु तैजस पुद्गलों को ग्रहण करने के लिए किया जाने वाला समुद्घात तैजस समुद्घात कहलाता है। ज्ञातव्य है कि यह तेजो लेश्या छह लेश्याओं के अन्तर्गत आई तेजो लेश्या से भिन्न है।

6. आहारक समुद्घात- आहारक शरीर का निर्माण करने हेतु आहारक पुद्गलों को ग्रहण करने के लिए किया जाने वाला समुद्घात आहारक समुद्घात कहलाता है।

7. केवली समुद्घात- वेदनीय, नाम व गोत्र-इन तीन कर्मों की स्थिति को आयु कर्म की स्थिति के तुल्य करने के लिए केवली भगवान् द्वारा मोक्ष जाने के अन्तर्मुहूर्त पहले किया जाने वाला समुद्घात केवली समुद्घात कहलाता है। यह समुद्घात सभी केवलियों द्वारा किया जाना अनिवार्य नहीं है।

- नैरयिकों में : 4 समुद्घात-वेदना, कषाय, मारणांतिक और वैक्रिय भवनवासी से यावत् 12वें देवलोक तक : अनुक्रम से 5 समुद्घात नवग्रैवेयक व पाँच अनुत्तर में भी : 5 समुद्घात शक्ति से पावे किन्तु करते हैं : 3-वेदना, कषाय, मारणांतिक
- चार स्थावर (पृथ्वी., अप्,तेज., वन.) व असन्नी मनुष्य में : 3-वेदना, कषाय, मरणांतिक वायुकायिक में : 4-वेदना, कषाय, मारणांतिक और वैक्रिय
- तीन विकलेन्द्रिय व असन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च में : 3-वेदना, कषाय, मारणांतिक
- सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च में : 5-वेदना, कषाय, मारणांतिक

वैक्रिय, तैजस

- कर्मभूमिज मनुष्य में : 7 (सभी)
- युगलिक मनुष्य में : 3-वेदना, कषाय, मारणांतिक
- सिद्ध भगवान में : समुद्घात नहीं।

10. सन्नी द्वार

जिसके मन हो उसे संज्ञी और जिसके मन नहीं हो उसे असंज्ञी कहते हैं।

- पहली पृथ्वी के नैरयिक, भवनवासी और वाणव्यन्तर में : सन्नी-असन्नी दोनों उत्पन्न होते हैं, असन्नी कुछ देर बाद सन्नी हो जाते हैं।
दूसरी पृथ्वी के नैर. से 7वीं पृथ्वी के नैर. तक, ज्योतिष्क से पाँच अनुत्तर विमान तक : सन्नी
- पाँच स्थावर व असन्नी मनुष्य : असन्नी
- तीन विकलेन्द्रिय व असन्नी पंचे. तिर्यञ्च : असन्नी
- सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च : सन्नी
- कर्मभूमिज मनुष्य : सन्नी, नोसन्नी नोअसन्नी भी (13वें, 14वें गुण. की अपेक्षा)
- युगलिक मनुष्य : सन्नी
- सिद्ध भगवान : सन्नी नहीं, असन्नी नहीं, नोसन्नी नोअसन्नी हैं।

▼ जो असन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च नैरयिक देव में उत्पन्न होते हैं उनमें बाटे बहते में तथा कुछ समय तक विभंगज्ञान नहीं होता है जबकि जो मिथ्यादृष्टि सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च नैरयिक देव में उत्पन्न होते हैं उनमें बाटे बहते से ही विभंगज्ञान हो जाता है। यह भिन्नता बतलाने के लिए ही नैरयिक देव में असंज्ञी का भेद किया गया है।

11. वेद द्वार

कुशील सेवन की अभिलाषा को वेद कहते हैं। इसके तीन भेद होते हैं-1. स्त्री वेद, 2. पुरुष वेद, 3. नपुंसक वेद।

- | | | |
|---|---|---|
| 1. नैरयिक में | : | एक-नपुंसक वेद |
| भवनवासी, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क | | |
| पहला व दूसरा देवलोक में | : | दो-स्त्री वेद, पुरुष वेद |
| तीसरे देव. से सर्वार्थसिद्ध तक | : | एक-पुरुष वेद |
| 2. पाँच स्थावर व असन्नी मनुष्य में | : | एक-नपुंसक वेद |
| 3. तीन विकलेन्द्रिय व असन्नी पंचे. तिर्यञ्च में | : | एक-नपुंसक वेद |
| 4. सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च में | : | तीनों वेद |
| 5. कर्मभूमिज मनुष्य में | : | तीनों वेद व अवेदी भी (9वें गुण. से 14वें गुण. तक) |
| 6. युगलिक मनुष्य में | : | दो-स्त्री वेद, पुरुष वेद |
| 7. सिद्ध भगवान में | : | वेद नहीं, अवेदी हैं। |

12. पर्याप्ति द्वार

पर्याप्ति = सामर्थ्य, योग्यता। आहार, शरीर, इन्द्रिय आदि संबंधी सामर्थ्य से सम्पन्न होने को पर्याप्ति कहते हैं। पर्याप्तियां पांच अथवा छह होती हैं।

1. आहार पर्याप्ति, 2. शरीर पर्याप्ति, 3. इन्द्रिय पर्याप्ति, 4. आनापान पर्याप्ति, 5. भाषामन पर्याप्ति। भाषा एवं मन को अलग-अलग गिनने से छह पर्याप्तियां होती हैं।

- | | | |
|-----------------------|---|--|
| 1. नैरयिक व देवों में | : | 5 अथवा 6 पर्याप्ति,
(5 पूर्णता की अपेक्षा, 6 विषय की अपेक्षा) |
| 2. पाँच स्थावर में | : | 4 पर्याप्ति |

- | | | |
|---|---|---|
| असन्नी मनुष्य | : | चौथी पर्याप्ति का अपर्याप्ता रहते ही मर जाते हैं। |
| 3. तीन विकलेन्द्रिय व असन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च में | : | 5 पर्याप्ति |
| 4. सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च | : | 5 अथवा 6 पर्याप्ति |
| 5. कर्मभूमिज मनुष्य | : | 5 अथवा 6 पर्याप्ति |
| 6. युगलिक मनुष्य | : | 5 अथवा 6 पर्याप्ति |
| | | (5 पूर्णता की अपेक्षा, 6 विषय की अपेक्षा) |
| 7. सिद्ध भगवान | : | नो पर्याप्त-नो अपर्याप्त हैं। |

13. दृष्टि द्वार

देव, गुरु, धर्म एवं जीवादि नौ सद्भाव पदार्थों के यथार्थ स्वरूप विषयक श्रद्धा-अश्रद्धा को दृष्टि कहते हैं। (यद्यपि दृष्टि शब्द का अर्थ नेत्र ज्योति या देखने की शक्ति से होता है, परन्तु प्रस्तुत प्रकरण में दृष्टि का अर्थ श्रद्धा है।) इसके तीन भेद होते हैं:- 1. सम्यग् दृष्टि, 2. मिथ्या दृष्टि, 3. सम्यग् मिथ्या (मिश्र) दृष्टि।

सम्यग् दृष्टि- सुदेव, सुगुरु, सुधर्म एवं जीव-अजीव आदि नौ सद्भाव पदार्थों के यथार्थ स्वरूप पर संपूर्ण श्रद्धा होना सम्यग् दर्शन कहलाता है। सम्यग् दर्शन से युक्त जीव को सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

मिथ्या दृष्टि- सुदेव, सुगुरु, सुधर्म एवं जीव-अजीव आदि नौ सद्भाव पदार्थों के यथार्थ स्वरूप पर आंशिक अथवा संपूर्ण अश्रद्धा (विपरीत श्रद्धा) होना मिथ्या दर्शन कहलाता है। मिथ्या दर्शन से युक्त जीव को मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

सम्यग् मिथ्या (मिश्र) दृष्टि- सुदेव, सुगुरु, सुधर्म एवं जीव-अजीव आदि नौ सद्भाव पदार्थों के यथार्थ स्वरूप पर श्रद्धा और अश्रद्धा-दोनों का ही न होना सम्यग् मिथ्या दर्शन कहलाता है। सम्यग् मिथ्या दर्शन से युक्त जीव को सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

- | | | |
|--|---|--|
| 1. नैरयिक और भवनवासी से नव
ग्रैवेयक तक | : | 3 दृष्टि-सम्यग्, मिथ्या,
सम्यग्मिथ्या |
| 15 परमाधार्मिक व 3 किल्बिषी | : | 1-मिथ्या दृष्टि |
| 5 अनुत्तर विमान | : | 1-सम्यग् दृष्टि |
| 2. पाँच स्थावर व असन्नी मनुष्य | : | 1-मिथ्या दृष्टि |
| 3. तीन विकले. व असन्नी पंचे. ति. | : | 2-सम्यग् दृष्टि, मिथ्या दृष्टि |
| 4. सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च | : | 3-सम्यग्, मिथ्या,सम्यग्-मिथ्या |
| 5. कर्मभूमिज मनुष्य | : | 3-सम्यग्, मिथ्या,सम्यग्-मिथ्या |
| 6. युगलिक मनुष्य-30 अकर्मभूमिज,
56 अन्तर्द्वीपज | : | 2-सम्यग्, मिथ्या
1-मिथ्या दृष्टि |
| 7. सिद्ध भगवान | : | 1-सम्यग् दृष्टि। |

14. दर्शन द्वार-

जिसमें महासत्ता (सामान्य) का प्रतिभास (निराकार झलक) हो, उसको **दर्शन** कहते हैं। इसके चार भेद हैं-

1. **चक्षु दर्शन**- चक्षुरिन्द्रिय से होने वाला सत्ता रूप सामान्य धर्म का बोध चक्षुदर्शन कहलाता है।

2. **अचक्षु दर्शन**- चक्षुरिन्द्रिय के अतिरिक्त शेष चार इन्द्रियों एवं मन से होने वाला सत्ता रूप सामान्य धर्म का बोध अचक्षुदर्शन कहलाता है।

3. **अवधि दर्शन**- इन्द्रियों एवं मन की सहायता के बिना साक्षात् आत्मा से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादापूर्वक रूपी पदार्थों के सत्ता रूप सामान्य धर्म का बोध **अवधिदर्शन** कहलाता है।

4. **केवल दर्शन**- सभी पदार्थों के भूत, वर्तमान एवं भविष्य संबंधी सत्ता रूप सामान्य धर्म का एक साथ बोध केवलदर्शन कहलाता है।

- | | | |
|-----------------------|---|-----------------------------|
| 1. नैरयिक व देवों में | : | 3-चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन |
| 2. पाँच स्थावर में | : | 1-अचक्षु दर्शन |
| असन्नी मनुष्य में | : | 2-चक्षु, अचक्षु दर्शन |

- | | | |
|-------------------------------------|---|-----------------------------------|
| 3. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय में | : | 1-अचक्षु दर्शन |
| चतुरिन्द्रिय व असन्नी पंचे. ति. में | : | 2-चक्षु, अचक्षु दर्शन |
| 4. सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च में | : | 3-चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन |
| 5. कर्मभूमिज मनुष्य में | : | 4-चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल दर्शन |
| 6. युगलिक मनुष्य में | : | 2-चक्षु, अचक्षु दर्शन |
| 7. सिद्ध भगवान में | : | 1-केवल दर्शन। |

15. ज्ञान- अज्ञान द्वार-

किसी विवक्षित पदार्थ के विशेष धर्म को विषय करने वाला बोध **ज्ञान** कहलाता है। इसके दो भेद हैं- सम्यग् ज्ञान, मिथ्या ज्ञान।

सम्यग् ज्ञान के पाँच भेद हैं- 1. आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान, 2. श्रुतज्ञान, 3. अवधिज्ञान, 4. मनः पर्ययज्ञान, 5. केवलज्ञान।

1. **आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान** - अभि=अभिमुख होकर, नि=नियत (निश्चित), बोध=जनना अर्थात् पाँच इन्द्रियों एवं मन के द्वारा अपने-अपने विषय के अभिमुख होकर जो नियत बोध किया जाता है, वह आभिनिबोधिक ज्ञान कहलाता है।

2. **श्रुतज्ञान**- आभिनिबोधिक ज्ञान से जाने हुए पदार्थ को स्पष्टतर जानना श्रुतज्ञान कहलाता है।

3. **अवधिज्ञान**-अवधि=मर्यादा। मर्यादा के दो अर्थ हैं-

(I) रूपी पदार्थों को ही जान सकता है, अरूपी को नहीं।

(II) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा।

इन्द्रियों एवं मन की सहायता के बिना साक्षात् आत्मा से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादापूर्वक रूपी पदार्थों के विशेष धर्म को जानना अवधिज्ञान कहलाता है। यह सम्यग्दृष्टि जीवों को ही होता है।

4. **मनः पर्ययज्ञान**- मनःपर्यय = मन की पर्यायें (मन के भाव)। इन्द्रियों एवं मन की सहायता के बिना साक्षात् आत्मा से मनुष्य क्षेत्र में रहे हुए संज्ञी पंचेन्द्रिय

जीवों (तिर्यच, मनुष्य व देव) के मन के भावों को जानना मनःपर्यवज्ञान कहलाता है। यह साधु-साध्वियों को ही होता है।

5. **केवलज्ञान**- केवल = सम्पूर्ण। सभी पदार्थों के भूत, वर्तमान एवं भविष्य संबंधी सम्पूर्ण विशेष धर्मों को एक साथ स्पष्ट जानना केवलज्ञान कहलाता है। यह ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करने वाली आत्माओं को ही होता है।

मिथ्याज्ञान के तीन भेद हैं- 1. **मतिअज्ञान**, 2. **श्रुतअज्ञान**, 3. **विभंगज्ञान**। ये तीन अज्ञान हैं।

१. मिथ्यादृष्टि एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों को इन्द्रियों एवं मन की सहायता से उत्पन्न होने वाली मति को **मतिअज्ञान** कहते हैं

२. मिथ्यादृष्टि एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों को इन्द्रियों एवं मन की सहायता से उत्पन्न होने वाले श्रुत को **श्रुतअज्ञान** कहते हैं।

३- मिथ्यादृष्टि एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों को इन्द्रियों एवं मन की सहायता के बिना साक्षात् आत्मा से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादापूर्वक होने वाले रूपी पदार्थों के बोध को **विभंगज्ञान** कहते हैं।

1. नैरयिक व भवनवासी से नवग्रैवेयक तक :

3 ज्ञान-आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधिज्ञान
3 अज्ञान-मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंग ज्ञान

15 परमाधार्मिक व 3 किल्बिषी :

3 अज्ञान

5 अनुत्तर विमान :

3 ज्ञान (पूर्वोक्त)

2. पाँच स्थावर व असन्नी मनुष्य :

2 अज्ञान-मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान

3. तीन विकलेन्द्रिय व असन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च :

2 ज्ञान-आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान, श्रुत ज्ञान,
2 अज्ञान-मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान

4. सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च :

3 ज्ञान (पूर्वोक्त), 3 अज्ञान

5. कर्मभूमिज मनुष्य :

5 ज्ञान व 3 अज्ञान

6. युगलिक मनुष्य-30 अकर्मभूमिज :

2 ज्ञान-आभिनिबोधिक (मति)

जैन संस्कार पाठ्यक्रम भाग-9

ज्ञान, श्रुत ज्ञान

2 अज्ञान-मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान

56 अन्तर्द्वीपज

: 2 अज्ञान-मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान

7. सिद्ध भगवान

: 1-केवल ज्ञान

16. योग द्वार-

योग अर्थात् प्रवृत्ति। मन, वचन, काया की शुभ-अशुभ प्रवृत्ति को योग कहते हैं। इसके 15 भेद हैं- 4 मन के, 4 वचन के और 7 काया के।

4 **मन के** - 1. सत्य मनोयोग, 2. मृषा मनोयोग, 3. सत्यमृषा मनोयोग, 4. असत्यमृषा मनोयोग।

4 **वचन के** - 1. सत्य वचनयोग, 2. मृषा वचन योग, 3. सत्यमृषा वचन योग, 4. असत्यमृषा वचन योग।

7 **काया के** - 1. औदारिक काय योग, 2. औदारिक मिश्र काय योग, 3. वैक्रिय काय योग, 4. वैक्रिय मिश्र काय योग, 5. आहारक काय योग, 6. आहारक मिश्र काय योग, 7. कर्मण काय योग*।

1. नैरयिक और देवों में योग :

11-4 मन, 4 वचन, 3 काया (वैक्रिय, वैक्रिय मिश्र, कर्मण काय योग)

2. चार स्थावर व असन्नी मनुष्य वायुकायिक :

3-औदारिक, औदारिक मिश्र, कर्मण, 5-औदा., औदा. मिश्र, वै., वै. मिश्र, कर्मण काय योग

3. तीन विकलेन्द्रिय व असन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च :

4-असत्यमृषा वचन योग (व्यवहार भाषा), औदा., औदा. मिश्र, कर्मण काय योग

4. सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च :

13-4 मन, 4 वचन, 5 काया (औदा.,

*तैजस शरीर की स्वतः कहीं प्रवृत्ति नहीं होती इसलिए तैजस काय योग नहीं होता है।

औदा. मिश्र, वै., वै. मिश्र, कार्मण
काय योग)

5. कर्मभूमिज मनुष्य : 15-सभी व अयोगी भी होते हैं (14वें गुण. में)
6. युगलिक मनुष्य : 11-4 मन, 4 वचन, 3 काया (औदा. औदा. मिश्र, कार्मण काय योग)
7. सिद्ध भगवान : अयोगी होते हैं।

17. उपयोग द्वार

आत्मा की बोधा रूप प्रवृत्ति को **उपयोग** कहते हैं। विशेष धर्मों का बोध साकार उपयोग है। तथा सत्ता रूप सामान्य धर्म (स्वभाव) का बोध अनाकार उपयोग है। इसके 12 भेद होते हैं- 5 ज्ञान के, 3 अज्ञान के, 4 दर्शन के।

1. नैरयिक व देवों में नवग्रैवेयक तक : 9 (3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन)
15 परमाधार्मिक व 3 किल्विषी : 6 (3 अज्ञान, 3 दर्शन)
5 अनुत्तर विमान : 6 (3 ज्ञान, 3 दर्शन)
2. पाँच स्थावर : 3 (मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, अचक्षु दर्शन)
असन्नी मनुष्य : 4 (मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन)
3. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय : 5 (2 ज्ञान, 2 अज्ञान, एक अचक्षु दर्शन)
चतुरिन्द्रिय व असन्नी पंचे. ति. : 6 (2 ज्ञान, 2 अज्ञान, 2 दर्शन)
4. सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च : 9 (3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन)
5. कर्मभूमिज मनुष्य : 12 (5 ज्ञान, 3 अज्ञान, 4 दर्शन)
6. युग. मनुष्य-30 अकर्मभूमिज : 6 (2 ज्ञान, 2 अज्ञान, 2 दर्शन)
56 अन्तर्द्वीपज : 4 (2 अज्ञान, 2 दर्शन)
7. सिद्ध भगवान : 2 (केवल ज्ञान, केवल दर्शन)

18. आहार द्वार

जीव के द्वारा शरीर के निर्माण, धारण अथवा पोषण के लिए ग्रहण किए जाने वाले पुद्गलों को **आहार** कहते हैं।

जीव 288 बोल का आहार करता है। आहार तीन प्रकार का होता है- सचित्त, अचित्त, मिश्रा प्रकारान्तर से भी आहार के तीन भेद होते हैं- ओज (शरीर द्वारा), रोम (त्वचा द्वारा), प्रक्षेपाहार (कवल द्वारा जो ग्रहण किया जाता है।)

1. नैरयिक व देव : आहार लेवे-288 बोल
का छः दिशाओं से
2. पाँच स्थावर : 288 बोल का, कदाचित् 3, कदाचित् 4, कदाचित् 5 दिशाओं का, निर्व्याघात की अपेक्षा छः दिशाओं से
असन्नी मनुष्य : 288 बोल का, छः दिशाओं से
3. तीन विकलेन्द्रिय असन्नी : 288 बोल का, छः दिशाओं से
पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च
4. सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च : 288 बोल का, छः दिशाओं से
5. कर्मभूमिज मनुष्य : 288 बोल का, छः दिशाओं से व अनाहारक भी (13वें, 14वें गुण. में)

● 288 बोल :- द्रव्य से-अनंत प्रदेशी, क्षेत्र से-असंख्येय प्रदेशावगाढ, काल से 12 भेद-एक समय की स्थिति के पुद्गलों का यावत् दस समय, संख्येय समय, असंख्येय समय की स्थिति के पुद्गलों का लेवे, भाव से 260 भेद-एक गुण काला यावत् दस गुण काला, संख्येय गुण, असंख्यात गुण और अनंत गुण काला। इसी तरह तेरह-तेरह भेद करने से (वर्णादि 20x13), स्पृष्ट, अवगाढ, अनंतरावगाढ, सूक्ष्म, बादर, ऊँचे, नीचे, तिष्ठे, आदि, मध्य, अन्त, स्वविषय, आनुपूर्वी और नियम पूर्वक छः दिशाओं का ग्रहण करें। (1+1+12+260+14)=288 हुए।

▼ 13वें गुण. में केवलिसमुद्घात की अपेक्षा।

6. युगलिक मनुष्य : 288 बोल का, छः दिशाओं से
7. सिद्ध भगवान : आहारक नहीं, अनाहारक होते हैं।

19. उपपाद द्वार

जीव पूर्वभव से आकर उत्पन्न हो, उसे **उपपाद** कहते हैं।

1. नैरयिक व भवनवासी से : एक समय में -जघन्य 1 या 2 या 8वें देव. तक 3 यावत् संख्येय उत्कृष्ट असंख्येय उत्पन्न होवे।
नौवें देव. से सर्वार्थसिद्ध तक : जघन्य 1 या 2 या 3 उत्कृष्ट संख्येय।
2. चार स्थावर में : प्रति समय निरन्तर असंख्येय उपजे
वनस्पतिकायिक में : प्रति समय अनन्त उपजे
असन्नी मनुष्य में : जघन्य 1 या 2 या 3 यावत् संख्येय उ. असंख्येय उपजे
3. तीन विकले. व असन्नी पंचे. ति. : जघन्य 1 या 2 या 3 यावत् संख्येय उ. असंख्येय
4. सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च : जघन्य 1 या 2 या 3 यावत् संख्येय उ. असंख्येय
5. कर्मभूमिज मनुष्य : जघन्य 1 या 2 या 3 उत्कृष्ट संख्येय
6. युगलिक मनुष्य : जघन्य 1 या 2 या 3 उत्कृष्ट संख्येय
7. सिद्ध भगवान : जघन्य 1 या 2 या 3 उत्कृष्ट 108 सिद्ध होते हैं।

20. स्थिति द्वार

जीव जितने काल तक जिस भव की पर्याय को धारण करे, उसे **स्थिति** कहते हैं।

नैरयिक एवं देव की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट 33 सागरोपम की।

पहली पृथ्वी के नैरयिकों की जघन्य 10 हजार वर्ष उ. 1 सागरोपम की।
दूसरी पृथ्वी के नैरयिकों की ज. एक सागरोपम उ. 3 सागरोपम की।
तीसरी पृथ्वी के नैरयिकों की ज. 3 सागरोपम उ. 7 सागरोपम की।
चौथी पृथ्वी के नैरयिकों की ज. 7 सागरोपम उ. 10 सागरोपम की।
पाँचवी पृथ्वी के नैरयिकों की ज. 10 सागरोपम उ. 17 सागरोपम की।
छठी पृथ्वी के नैरयिकों की ज. 17 सागरोपम उ. 22 सागरोपम की।
सातवीं पृथ्वी के नैरयिकों की ज. 22 सागरोपम उ. 33 सागरोपम की।

भवनवासी देव के असुरकुमार जाति के दो इन्द्र हैं- चमरेन्द्रजी और बलीन्द्रजी।

चमरेन्द्र के रहने की चमरचंचा राजधानी, जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा में अधोलोक में हैं। बलीन्द्रजी के रहने की बलिचंचा राजधानी जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से उत्तर दिशा में अधोलोक में हैं।

चमरेन्द्रजी के भवनवासी देवों की स्थिति

जघन्य 10 हजार वर्ष उत्कृष्ट एक सागरोपम।
उनकी देवी की ज. 10 हजार वर्ष उत्कृष्ट साढ़े तीन (3½) पल्योपम।
शेष नौ जाति के दक्षिण दिशा के भवनवासी देवों की स्थिति-
ज. 10 हजार वर्ष उत्कृष्ट डेढ़ (1½) पल्योपम।
उनकी देवी ज. 10 हजार वर्ष उत्कृष्ट पौन (¾) पल्योपम।

बलीन्द्रजी के भवनवासी देवों की स्थिति

ज. 10 हजार वर्ष उत्कृष्ट एक सागरोपम झाड़ोरा।
उनकी देवी ज. 10 हजार वर्ष उत्कृष्ट साढ़े चार (4½) पल्योपम।
शेष नौ जाति के उत्तर दिशा वाले भवनवासी देवों की स्थिति :-
ज. 10 हजार वर्ष उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम।
उनकी देवी ज. 10 हजार वर्ष उत्कृष्ट देशोन एक पल्योपम।
वाणव्यन्तर देवों की स्थिति ज. 10 हजार वर्ष उत्कृष्ट 1 पल्योपम।

उनकी देवी की ज. 10 हजार वर्ष उत्कृष्ट अर्द्ध (½) पल्योपम।

ज्योतिष्क देवों की स्थिति

ज्योतिष्क देवों के पाँच भेद :- 1. चन्द्र 2. सूर्य 3. ग्रह 4. नक्षत्र और 5. तारा।

चन्द्र- विमानवासी देवों की स्थिति-

ज. पाव पल्योपम उ. 1. पल्योपम 1 लाख वर्ष।

देवी- ज. पाव पल्योपम उ. आधा पल्योपम और 50 हजार वर्ष।

सूर्य- विमानवासी देवों की स्थिति-

ज. पाव पल्योपम उ. 1. पल्योपम 1 हजार वर्ष।

देवी- ज. पाव पल्योपम उ. आधा पल्योपम 500 वर्ष।

ग्रह- विमानवासी देवों की स्थिति -

ज. पाव पल्योपम उ. 1 पल्योपम।

देवी- ज. पाव पल्योपम उ. आधा पल्योपम।

नक्षत्र- विमानवासी देवों की स्थिति-

ज. पाव पल्योपम उ. आधा पल्योपम।

देवी- ज. पाव पल्योपम उ. पाव पल्योपम झाड़ेरा।

तारा- विमानवासी देवों की स्थिति-

ज. पल्योपम के आठवें भाग ($\frac{1}{8}$) उ. पाव पल्योपम।

देवी- ज. पल्योपम के आठवें भाग उ. पल्योपम के आठवें भाग झाड़ेरा।

वैमानिक देवों की स्थिति

पहले देवलोक के देवों की स्थिति ज. 1 पल्योपम, उ. 2 सागरोपम।

उनकी देवियां दो प्रकार की हैं- 1. परिगृहीता और 2. अपरिगृहीता।

परिगृहीता देवियों की स्थिति ज. 1 पल्योपम उ. 7 पल्योपम।

अपरिगृहीता देवियों की स्थिति ज. 1 पल्योपम उ. 50 पल्योपम।

दूसरे देवलोक के देवों की स्थिति ज. 1 पल्योपम झा. उ. 2 सागरोपम झाड़ेरा।

परिगृहीता देवियों की स्थिति

अपरिगृहीता देवियों की स्थिति

तीसरे देव. के देवों की स्थिति

चौथे देव. के देवों की स्थिति

पाँचवें देव. के देवों की स्थिति

छठे देव. के देवों की स्थिति

सातवें देव. के देवों की स्थिति

आठवें देव. के देवों की स्थिति

नौवें देव. के देवों की स्थिति

दसवें देव. के देवों की स्थिति

ग्यारहवें देव. के देवों की स्थिति

बारहवें देव. के देवों की स्थिति

पहले ग्रैवेयक के देवों स्थिति

दूसरे ग्रैवेयक के देवों स्थिति

तीसरे ग्रैवेयक के देवों स्थिति

चौथे ग्रैवेयक के देवों स्थिति

पाँचवें ग्रैवेयक के देवों स्थिति

छठे ग्रैवेयक के देवों स्थिति

सातवें ग्रैवेयक के देवों स्थिति

आठवें ग्रैवेयक के देवों स्थिति

नौवें ग्रैवेयक के देवों स्थिति

चार अनु. विमान के देवों की स्थिति

सर्वार्थसिद्ध विमान के देवों की स्थिति

अजघन्य-अनुत्कृष्ट 33 सागरो।

पहली किल्विषी की स्थिति-3 पल्योपम

दूसरी किल्विषी की स्थिति-3 सागरोपम

तीसरी किल्विषी की स्थिति-13 सागरोपम

9 लोकान्तिक देवों की स्थिति-8 सागरोपम

2. **पृथ्वीकायिक** की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त्त उ. 22 हजार वर्ष।

ज. 1 पल्यो. झा. उ. 9 पल्यो.।

ज. 1 पल्यो. झा. उ. 55 पल्यो.।

ज. 2 सागरोपम उ. 7 सागरो.।

ज. 2 सागरो. झा. उ. 7 सागरो.झा.।

ज. 7 सागरो. उ. 10 सागरो.।

ज. 10 सागरो. उ. 14 सागरो.।

ज. 14 सागरो. उ. 17 सागरो.।

ज. 17 सागरो. उ. 18 सागरो.।

ज. 18 सागरो. उ. 19 सागरो.।

ज. 19 सागरो. उ. 20 सागरो.।

ज. 20 सागरो. उ. 21 सागरो.।

ज. 21 सागरो. उ. 22 सागरो.।

ज. 22 सागरो. उ. 23 सागरो.।

ज. 23 सागरो. उ. 24 सागरो.।

ज. 24 सागरो. उ. 25 सागरो.।

ज. 25 सागरो. उ. 26 सागरो.।

ज. 26 सागरो. उ. 27 सागरो.।

ज. 27 सागरो. उ. 28 सागरो.।

ज. 28 सागरो. उ. 29 सागरो.।

ज. 29 सागरो. उ. 30 सागरो.।

ज. 30 सागरो. उ. 31 सागरो.।

ज. 31 सागरो. उ. 33 सागरो.।

22. च्यवन द्वार

जीव वर्तमान भव को छोड़कर अन्य भव की पर्याय को धारण करे उसे **च्यवन** कहते हैं।

1. नैरयिक व भवनवासी से 8वें : जघन्य 1 या 2 या 3 यावत् संख्येय देवलोक तक उत्कृष्ट असंख्येय च्यवे नौवें देव. से सर्वार्थ सिद्ध तक : जघन्य 1 या 2 या 3 उ. संख्येय च्यवे
2. चार स्थावर में : प्रति समय असंख्येय च्यवे वनस्पतिकायिक में : प्रति समय अनन्त च्यवे असन्नी मनुष्य में : ज. 1 या 2 या 3 यावत् संख्येय उत्कृष्ट असंख्येय च्यवे
3. तीन विकलेन्द्रिय व असन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च में : जघन्य 1 या 2 या 3 यावत् संख्येय उत्कृष्ट असंख्येय च्यवे
4. सन्नी पंचे. तिर्यञ्च में : जघन्य 1 या 2 या 3 यावत् संख्येय उत्कृष्ट असंख्येय च्यवे
5. कर्मभूमिज मनुष्य में : जघन्य 1 या 2 या 3 उत्कृष्ट संख्येय च्यवे
6. युगलिक मनुष्य में : जघन्य 1 या 2 या 3 उत्कृष्ट संख्येय च्यवे
7. सिद्ध भगवान में : च्यवन (मरण) नहीं।

23. गति-आगति द्वार

गति- जीव मरने के बाद जिस गति में जाकर उत्पन्न होता है।

आगति- जीव जिस गति से आकर उत्पन्न होता है।

1. 1 से 6 पृथ्वी के नैरयिक : आगति 2 (ति. गति, मनु. गति)

वर्गणा 2 (20, 21)

: गति 2 (ति. गति, मनु. गति)
वर्गणा 2 (20, 21)

सातवीं पृथ्वी के नैरयिक : आगति 2 (ति. गति, मनु. गति)
वर्गणा 2 (20, 21)

: गति 1 (ति. गति)
वर्गणा 1 (20)

भवन., वाण., ज्यो., 1 व 2 देव. : आगति 2 (ति. गति, मनु. गति)
वर्गणा 2 (20, 21)

: गति 2 (ति. गति, मनु. गति) वर्गणा 5 (12, 13, 16, 20, 21) पृ., अप्., वन., पंचे.ति., मनु.

3 से 8 देवलोक : आगति 2 (ति. गति, मनु. गति)
वर्गणा 2 (20, 21)

: गति 2 (ति. गति, मनु. गति)
वर्गणा 2 (20, 21)

9वें देव. से सर्वार्थ सिद्ध तक : आगति 1 (मनुष्य गति) वर्गणा 1 (21)

: गति 1 (मनुष्य गति)
वर्गणा 1 (21)

2. पृथ्वी., अप्., वन. : आगति 3 (ति. गति, मनु. गति, देव गति)

वर्गणा 23 (नैरयिक के अलावा)
: गति 2 (ति. गति, मनु. गति)

वर्गणा 10 (5 स्थावर, 3 विकले., 1 पंचे. ति., 1 मनुष्य)

तेउ., वायु. : आगति 2 (ति. गति, मनु. गति)
वर्गणा 10 (औदारिक)

: गति 1 (ति. गति) वर्गणा 9

	(मनुष्य के अलावा 9 औदारिक)
असन्नी मनुष्य	: आगति 2 (ति. गति, मनु. गति) वर्गणा 8 औदा. (तेउ., वायु. नहीं)
	: गति 2 (ति. गति, मनु. गति) वर्गणा 10 (औदारिक)
3. तीन विकलेन्द्रिय	: आगति 2 (ति. गति, मनु. गति) वर्गणा 10 (औदारिक)
	: गति 2 (ति. गति, मनु. गति) वर्गणा 10 (औदारिक)
असन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च	: आगति 2 (ति. गति, मनु. गति) वर्गणा 10 (औदारिक)
	: गति 4 (न., ति., मनु., दे.) वर्गणा 22 (वैमा. ज्यो. नहीं)
4. सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च	: आगति 4 (चारों गति) वर्गणा 24
	: गति 4 (चारों गति) वर्गणा 24
5. कर्मभूमिज मनुष्य	: आगति 4 (चारों गति) वर्गणा 22 (तेउ., वायु. नहीं)
	: गति 4 (चारों गति) वर्गणा 24
6. युगलिक मनुष्य (30 अकर्म भूमिज)	: आगति 2 (ति. गति, मनु. गति) वर्गणा 2 (20, 21)
	: गति 1 (देव गति) वर्गणा 13 (10 भवन., 1 वाण., 1 ज्यो., 1 वैमा.)
56 अन्तर्द्वीपज	: आगति 2 (ति. गति, मनु. गति) वर्गणा 2 (20, 21)
	: गति 1 (देव गति) वर्गणा 11 (10 भवन., 1 वाण.)

7. सिद्ध भगवान	: आगति 1 (मनुष्य गति) वर्गणा 1 (मनुष्य)
	: गति नहीं।

24. प्राण द्वार

जीवित रहने एवं इन्द्रियादि की प्रवृत्ति करने में कारणभूत शक्ति विशेष को प्राण कहते हैं। इसके 10 भेद हैं-

1. श्रोतेन्द्रिय बलप्राण, 2. चक्षुरिन्द्रिय बलप्राण, 3. घ्राणेन्द्रिय बलप्राण, 4. जिह्वेन्द्रिय बलप्राण, 5. स्पर्शेन्द्रिय बलप्राण, 6. मनबल प्राण, 7. वचन बलप्राण, 8. काय बलप्राण, 9. श्वासोच्छ्वास बलप्राण 10. आयुष्य बलप्राण।

1. नैरयिक व देव में	: प्राण पावे 10
2. पाँच स्थावर में	: 4-स्पर्श., काय., श्वासो., आयुष्य
असन्नी मनुष्य में	: 7*-पाँच इन्द्रिय, काय व आयुष्य
3. द्वीन्द्रिय में	: 6-जिह्वे., स्पर्श., वचन., काय, श्वासोच्छ्वास, आयुष्य
त्रीन्द्रिय में	: 7-उपरोक्त 6 व घ्राणेन्द्रिय बल प्राण
चतुरिन्द्रिय में	: 8-उपरोक्त 7 व चक्षुरिन्द्रिय बल प्राण
असन्नी पंचे. ति. में	: 9-उपरोक्त 8 व श्रोतेन्द्रिय बल प्राण
4. सन्नी पंचे. ति. में	: 10 सभी
5. कर्मभूमिज मनुष्य में	: 10 सभी
6. युगलिक मनुष्य में	: 10 सभी
7. सिद्ध भगवान में	: द्रव्य प्राण नहीं, भाव प्राण-4 (ज्ञान, दर्शन, सुख और आत्म शक्ति)।

❖ अपर्याप्त जीव उच्छ्वास नाम का बंध नहीं करता। -कर्म ग्रंथ -5
पर्याप्त पूर्ण होने पर ही तत्संबंधी प्राण मानना चाहिए। पर्याप्त पूर्ण न होने पर प्राण का अभाव मानना चाहिए, अधुरापन नहीं। असंज्ञी मनुष्य में आनापान पर्याप्त पूर्ण नहीं होती, अतः उसमें सात प्राण माने जाने चाहिए, सात झाड़ेरा या आठ माटेरा नहीं।

25. योग द्वार

योग अर्थात् प्रवृत्ति। मन, वचन, काया की शुभ-अशुभ प्रवृत्ति को योग कहते हैं। योग के तीन भेद- 1. मनयोग, 2. वचन योग, 3. काययोग।

1. नैरयिक व देव में : 3 योग
2. पाँच स्थावर व असन्नी मनुष्य : 1 काययोग
3. तीन विकलेन्द्रिय व असन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च : 2-वचनयोग, काययोग
4. सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च : 3 योग
5. कर्मभूमिज मनुष्य : 3 योग व अयोगी भी (14वें गुणस्थान में)
6. युगलिक मनुष्य : 3 योग
7. सिद्ध भगवान : योग नहीं, अयोगी होते हैं।

2. प्रतिक्रमण (साधु) के 33 बोल

श्रीमद् उत्तराध्ययन, समवायांग तथा दशाश्रुतस्कंध सूत्र आदि के आधार से प्रतिक्रमण (साधु) के 33 बोल का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं-

पहले बोले - एक प्रकार का असंयम
सर्व आम्रव से निवृत्त नहीं होना।

दूसरे बोले - दो प्रकार का बंधन
रागबंधन और द्वेषबंधन।

तीसरे बोले - तीन प्रकार का दण्ड
1. मनदण्ड, 2. वचनदण्ड, 3. कायदण्ड।

तीन प्रकार की गुप्ति
1. मनगुप्ति, 2. वचनगुप्ति, 3. कायगुप्ति।

तीन प्रकार का शल्य
1. मायाशल्य, 2. निदानशल्य, 3. मिथ्यादर्शनशल्य।

तीन प्रकार का गर्व
1. ऋद्धिगर्व, 2. रसगर्व, 3. सातागर्व।

तीन प्रकार की विराधना
1. ज्ञान की विराधना, 2. दर्शन की विराधना, 3. चारित्र की विराधना।

चौथे बोले - चार कषाय
1. क्रोधकषाय, 2. मानकषाय, 3. मायाकषाय, 4. लोभकषाय।

चार संज्ञा
1. आहारसंज्ञा, 2. भयसंज्ञा, 3. मैथुनसंज्ञा, 4. परिग्रहसंज्ञा।

चार कथा
1. स्त्रीकथा, 2. भक्तकथा, 3. देशकथा, 4. राजकथा।

चार ध्यान

1. आर्तध्यान, 2. रौद्रध्यान, 3. धर्मध्यान 4. शुक्लध्यान तथा
1. पदस्थ, 2. पिण्डस्थ, 3. रूपस्थ और 4. रूपातीतध्यान।

पाँचवें बोले - पाँच क्रिया

1. कायिकी, 2. आधिकरणिकी, 3. प्राद्वेषिकी, 4. पारितापनिकी, 5. प्राणातिपातिकी।

पाँच कामगुण

1. शब्द, 2. रूप, 3. गंध, 4. रस, 5. स्पर्श।

पाँच महाव्रत

1. सर्वथा प्राणातिपात से निवृत्ति, 2. सर्वथा मृषावाद से निवृत्ति, 3. सर्वथा अदत्तादान से निवृत्ति, 4. सर्वथा मैथुन से निवृत्ति, 5. सर्वथा परिग्रह से निवृत्ति (सर्वथा त्रिकरण त्रियोग से)।

पाँच समिति

1. ईर्यासमिति, 2. भाषासमिति, 3. एषणासमिति, 4. आदान-भांडमात्र-निक्षेपणासमिति, 5. उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-परिष्ठापनिका समिति (इन कामों में शुद्ध उपयोग)।

छठे बोले - छः काय

1. पृथ्वीकाय, 2. अप्काय 3. तेउकाय, 4. वायुकाय, 5. वनस्पतिकाय, 6. त्रसकाय।

छः लेश्या

1. कृष्णलेश्या, 2. नीललेश्या, 3. कापोतलेश्या, 4. तेजोलेश्या, 5. पद्मलेश्या, 6. शुक्ललेश्या।

सातवें बोले - सात भय

1. इहलोकभय- मनुष्य से मनुष्य को भय।
2. परलोकभय- मनुष्य को देवता या तिर्यञ्च से भय।
3. आदानभय- धन दौलत के नष्ट होने का भय।
4. अकस्मात्भय- कहीं से अनधारी आपत्ति आ जावे-अचानक दुःख आ जावे, ऐसा भय।
5. आजीविकाभय- भविष्य में खाने-पीने को मिलेगा या नहीं, सुख से

गुजारा होने में बाधा न आ जावे, ऐसा भय।

6. मरणभय- मौत का भय-कब मरूंगा यह निश्चित नहीं होने से हर समय मरण की शंका करना।
7. अपयशभय- किसी तरह इज्जत में हरकत पहुँचे या यशकीर्ति जैसी है वैसी कैसे बनी रहेगी, ऐसा भय।

आठवें बोले - आठ मद

1. जातिमद, 2. कुलमद, 3. बलमद, 4. रूपमद, 5. तपमद, 6. श्रुतमद, 7. लाभमद, 8. ऐश्वर्यमद (अहंकार)।

नवमें बोले - ब्रह्मचर्य की नौ गुप्ति

रक्षा-वाडें- 1. ब्रह्मचारी पुरुष ऐसे स्थान में न रहे जहाँ स्त्री, पुरुष, नपुंसक रहते हैं अथवा बारंबार आते जाते हों और रहे तो चूहे और बिल्ली का दृष्टांत- जिस जगह बिल्ली रहती हो उस जगह चूहे, चाहे जितनी सावधानी से रहे, तो भी उनके मारे जाने की संभावना है, वैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री आदि सहित स्थान में रहे तो उनके ब्रह्मचर्य के खण्डित होने की संभावना है।

2. ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री संबंधी कामराग बढ़ाने वाली कथा-वार्ता करे नहीं और करे तो जिह्वा (जीभ) और इमली-नींबू का दृष्टांत- जैसे इमली-नींबू रस का जानकार जब इमली-नींबू का नाम लेता है कि उसके मुँह में पानी छुटने लगता है-आ जाता है, वैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री सम्बन्धी वार्ता करे तो शीलरत्न भंग होने की संभावना रहती है।

3. स्त्री जिस स्थान पर कुछ देर बैठी हो, उस स्थान पर ब्रह्मचारी पुरुष को दो घड़ी तक बैठे नहीं और बैठे तो घृत (घी) और अग्नि का दृष्टांत- जैसे घृत अग्नि के पास रखा जावे तो वह घृत पिघल जाता है, वैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष का स्त्री के आसन पर बैठने से ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है।

4. ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री के अंगोपांग, रूप-लावण्य निरखे नहीं-बारंबार नजर भरकर देखे नहीं, देखे तो कच्ची आँख और सूर्य का दृष्टान्त- जैसे जन्मता बालक सूर्य को देखे तो अन्धा हो जाता है या उसका दृष्टिविषय घट जाता है, वैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री के अंगोपांग निरखे तो ब्रह्मचर्य का नाश होने

की संभावना है।

5. ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री के रूदन, गीत, हास्य, आक्रंद, कूजित इत्यादि शब्द सुनाई पड़े वैसे भीत या टाटी के आड़ में वास करे नहीं (पास के मकान में से भी इनकी ध्वनि कानों में आती हो वहाँ न रहे) और करे तो मेघ और मोर का दृष्टांत- जैसे मेघ के बादल के गर्जने पर मोर (मयूर) अवश्य बोलता है-कोकाट करता है, वैसे ही स्त्री के हास्यादि के शब्द सुनने पर कामराग बढ़ता है और ब्रह्मचर्य खण्डित होने की संभावना रहती है।

6. ब्रह्मचारी पुरुष पूर्वकाल के स्त्री के साथ भोगे हुए भोगों को याद न करे और करे तो जिनरक्षित और रयणा देवी का दृष्टांत- जैसे जिनरक्षित रयणा देवी के साथ के कामभोग याद करके ललचा गया और प्राण खोये, वैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष पूर्व के कामभोग का बारंबार स्मरण करे तो शीलरत्न गुमा देता है-नष्ट कर देता है।

7. ब्रह्मचारी पुरुष हमेशा सरस-स्वादिष्ट आहार करे नहीं और करे तो सन्निपात के रोगी को दूध-मिश्री का दृष्टांत अर्थात् जिसको सन्निपात-रोग हो गया है, उसे दूध-मिश्री पिलाई जावे तो वह मर जाता है, वैसे ही हमेशा सरस पुष्ट आहार करने वाला ब्रह्मचारी अपना ब्रह्मचर्य खो बैठता है।

8. ब्रह्मचारी पुरुष लूखा नीरस आहार भी दाब-दाब के करे नहीं, अधिक करे तो सेर की हांडी में सवासेर का दृष्टांत-अर्थात् जिस गारे की (कच्ची मिट्टी की) हांडी में सेर धान्य पकता है उसमें सवासेर रांध (पकाया) जावे तो हांडी का नुकसान होता है-फट जाती है, वैसे ही ब्रह्मचारी अधिक भोजन करे तो ब्रह्मचर्य गुमा देता है-नष्ट कर देता है।

9. ब्रह्मचारी पुरुष को स्नान शृंगार करना नहीं-शरीर का मण्डन विभूषा करना नहीं और करे तो रंक के हाथ में रत्न का दृष्टांत। जिस प्रकार रंक पुरुष में रत्न रखने की योग्यता न होने से उसे बाजार में हाथों में उछालता चलता है, देखने वाले का मन ललचा जाता है और रत्न छीन लिया जाता है, वह मूर्ख उसे पेटी में बंद नहीं रखता है, वैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष नहावे, धोवे, शृंगार करे तो उनमें भी शीलरत्न को रखने की अयोग्यता है, जिससे उसका ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है।

दसवें बोले - दस प्रकार का यतिधर्म

1. खन्ति- क्रोध पर विजय प्राप्त करना, क्षमा धारना।
2. मुत्ति- लोभरहित बनना।
3. अज्जवे- सरलता-निष्कपटता।
4. मद्दवे- मान, अहंकार का त्याग करना, नम्र बनना।
5. लाघवे- गौरव नहीं करना, लघुता होना।
6. सच्चवे- सच्चाई से, प्रामाणिकता से बोलना व आचरण करना।
7. संयमे- शरीर, मन और इन्द्रियों को काबू में रखना, वश करके नियम में रखना।
8. तवे- आत्मशक्ति बढ़े, मनोबल दृढ़ होवे, इच्छा का निरोध होवे उस विधि से उपवास आदि तप करना।
9. चियाए- ममता का त्याग करना।
10. बम्भचेरवासे- शुद्ध आचार पाले, मैथुन से संपूर्ण निवृत्ति करे- पराङ्ग गमुख रहे।

दस प्रकार की समाचारी-

1. आवस्सिया- उपाश्रय (स्थानक) से बाहर जाने का होवे तब बड़े मुनि से अर्ज करे कि मुझे बाहर जाना जरूरी है।
2. निसीहिया- उपाश्रय में पीछे (वापस) लौटते समय गुरु आदि से कहे कि मैं अपने काम से निवृत्त होकर आ गया हूँ।
3. आपुच्छणा- खुद के काम होवे तो गुरु से पूछे।
4. पडिपुच्छणा- अन्य मुनियों के काम होवे तो गुरु से बारंबार पूछे।
5. छन्दणा- अपनी लाई हुई वस्तु बड़ों को धामे, ग्रहण करने के लिए कहे।
6. इच्छाकार- गुरु से अर्ज करे कि अगर आपकी इच्छा होवे तो मुझे सूत्रार्थ-ज्ञानदान दीजिये।
7. मिच्छाकार- पापकर्म को गुरु के सामने मिथ्या दुष्कृत कहे।
8. तहक्कार- गुरु के वचन को प्रमाण करे, स्वीकार करे अथवा आप जैसा कहते हो वैसे ही है, ऐसा कहे।
9. अब्भुट्ठाणं- गुरु तथा बड़े मुनिवर आवे तब सात आठ कदम-पग सामने जावे और पीछे (वापस) लौटे तब उतना ही पहुँचाने जावे।
10. उवसंपया- गुरुजनों से सूत्रार्थ लक्ष्मी पाने के लिए हमेशा सावधान रहे

और गुरु के पास में रहे।

ग्यारहवें बोले - श्रावक की ग्यारह प्रतिमा

1. दर्शन प्रतिमा- एक मास की-शुद्ध अतिचार रहित समकित धर्म पाले।
2. व्रत प्रतिमा- दो मास की-नाना प्रकार के व्रत नियम अतिचार रहित पाले।
3. सामायिक प्रतिमा- तीन मास की-अतिचार रहित हमेशा सामायिक करे।
4. पौषधोपवास प्रतिमा- चार मास की-अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावास को अतिचार रहित प्रतिपूर्ण पौषध करे।
5. कायोत्सर्ग प्रतिमा- पाँच मास की-हमेशा रात्रि के अंदर कायोत्सर्ग करे और पाँच बातों का पालन करें।
(अ) स्नान न करे, (ब) रात्रि भोजन त्यागे, (स) धोती की लांग खुली रखे, (द) दिन को ब्रह्मचर्य पाले, (य) रात्रि को ब्रह्मचर्य का परिमाण करे।
6. ब्रह्मचर्य प्रतिमा- छः मास की-निरतिचार पूर्ण ब्रह्मचर्य पाले।
7. सचित्तपरिज्ञात प्रतिमा- जघन्य एक दिन की और उत्कृष्ट सात मास की-सचित्त वस्तु नहीं भोगे।
8. आरंभपरिज्ञात प्रतिमा- जघन्य एक दिन की और उत्कृष्ट आठ मास की-स्वयं आरंभ करे नहीं।
9. प्रेष्यपरिज्ञात प्रतिमा- जघन्य एक दिन की और उत्कृष्ट नौ मास की-दूसरे से भी आरंभ करावे नहीं।
10. उद्दिष्टभक्तपरिज्ञात प्रतिमा- जघन्य एक दिन की और उत्कृष्ट दस मास की-इनके लिए आरंभ करके कोई वस्तु देवे तो लेवे नहीं, खुरमुण्डन करावे अथवा शिखा रखे। किसी विषय में एक बार या बारंबार पूछे, तब जानते हुए को हाँ कहे और नहीं जानते हुए को ना कहे।
11. श्रमणभूत प्रतिमा- उत्कृष्ट ग्यारह मास की- खुरमुण्डन करे या लोच करे, साधु जितना ही उपकरण पात्र रजोहरण रखे, स्वज्ञाति की गोचरी करे और कहे कि मैं पडिमाधारी श्रावक हूँ। साधु की तरह उपदेश देवे। (सर्व प्रतिमा में साढ़े पाँच वर्ष लगते हैं।)

बारहवें बोले - भिक्षु की बारह प्रतिमा नीचे लिखी हुई चौदह कलमें हर एक प्रतिमाधारी पाले,

1. पहली प्रतिमा एक मास की-जिसमें
 - (i) शरीर पर ममता रखे नहीं, शरीर की शुश्रुषा करे नहीं-देव, मनुष्य, तिर्यञ्च संबंधी उपसर्ग सम परिणाम से सहन करे।
 - (ii) एक दत्ति आहार और एक दत्ति पानी-प्रासुक तथा ऐषणिक लेवे, (दत्ति=धार=एक साथ, धार खण्डित हुवे बिना जितना पात्रे में पड़े उतने को दत्ति कहते हैं।)
 - (iii) प्रतिमाधारी साधु गोचरी के लिए दिन के तीन विभाग करे और तीन भाग में से चाहे जिस एक विभाग में गोचरी करे।
 - (iv) प्रतिमाधारी साधु छः प्रकार से गोचरी करे (अ) पेड़ा (चौकोर पेटी) के आकार, (ब) अर्ध पेड़ा के आकार, (स) बैल के मूत्र के आकार, (द) पतंगिये उड़े उस तरह, (य) शंखा-वर्त, (र) जाते समय गोचरी करे तो आते समय नहीं करे।
 - (v) ग्राम के लोगों को मालूम पड़ जावे कि यह प्रतिमाधारी मुनि है तो वहाँ एक रात ही रहे और ऐसा मालूम नहीं पड़े तो दो रात्रि रहे, उपरांत जितनी रात रहे उतना प्रायश्चित्त का भागी बने।
 - (vi) प्रतिमाधारी साधु चार कारण से बोलते हैं- (अ) आहारादि की याचना करने के लिए, (ब) मार्ग पूछने के लिए, (स) आज्ञा पाने के लिए, (द) प्रश्न के उत्तर देने के लिए।
 - (vii) प्रतिमाधारी साधु तीन स्थान में निवास करे- (अ) बागबगीचा, (ब) चारों तरफ से खुले हुए गृह, (स) वृक्ष का तला, इनकी याचना करे।
 - (viii) प्रतिमाधारी साधु तीन प्रकार के संस्तारक आज्ञा लेकर ग्रहण करे- (अ) पृथ्वी शिला, (ब) काष्ठ शिला, (स) उपाश्रय में पहले से बिछा हुआ संस्तारक।
 - (ix) प्रतिमाधारी साधु जिस स्थान में है, वहाँ स्त्री प्रमुख आवे तो भय के मारे बाहर निकले नहीं, कोई जबरदस्ती हाथ पकड़कर निकाले तो ईर्यासमिति सहित बाहर हो जावे तथा वहाँ आग लगे तो भी भय से बाहर आवे नहीं। कोई बाहर निकाले तो ईर्यासमिति पूर्वक बाहर

- निकल जावे।
- (x) प्रतिमाधारी साधु के पग में कांटा लग जावे और आँख में कांटा (धूल-तृण प्रमुख) पड़ जावे तो आप उसे अपने हाथों से निकाले नहीं।
- (xi) प्रतिमाधारी साधु सूर्योदय से सूर्यास्त होने तक विहार करे, बाद में एक पग भी चले नहीं।
- (xii) प्रतिमाधारी साधु को सचित्त पृथ्वी पर बैठना, सोना कल्पे नहीं तथा सचित्त रज लगे हुए पैर से (पग से) गृहस्थ के यहाँ गोचरी जाना कल्पे नहीं।
- (xiii) प्रतिमाधारी साधु प्रासुक जल से हाथ, पैर, मुँह प्रमुख धोवे नहीं, अशुचि का लेप दूर करने को धोना कल्पे।
- (xiv) प्रतिमाधारी साधु के मार्ग में हाथी, घोड़ा अथवा जंगली जानवर सामने आये होवे तो भी मुनि भय से रास्ता छोड़े नहीं-जानवर की दया के लिए अलग हो जावे तथा रास्ते चलते धूप से छाया में और छाया से धूप में आवे नहीं, शीत उष्णता को सम परिणाम से सहन करे।
2. दूसरी प्रतिमा एक मास की-जिसमें दो दाति अन्न और दो दाति पानी का लेना कल्पे।
3. तीसरी प्रतिमा एक मास की-जिसमें तीन दाति अन्न और तीन दाति पानी लेना कल्पे।
- 4-7. इस तरह चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं प्रतिमा भी एक-एक मास की। उनमें क्रमशः चार दाति, पाँच दाति, छः दाति, सात दाति आहार पानी लेना कल्पे।
8. आठवीं प्रतिमा सात दिन की-चौविहार एकान्तर तप करे-ग्राम यावत् राजधानी के बाहर रहे।
9. नवमीं प्रतिमा सात दिन की-आठवीं प्रतिमा प्रमाणे। इतना विशेष कि तीन आसन में से एक आसन करे- दण्ड-आसन, लकटु-आसन, उत्कटु-आसन।
10. दसवीं प्रतिमा सात दिन की-आठवीं प्रतिमा प्रमाणे। इतना विशेष कि तीन में से एक आसन करे- गोदुह-आसन, वीरासन,

अम्बकुब्ज-आसन।

11. ग्यारहवीं प्रतिमा एक दिन की-चौविहार बेला करे, ग्राम यावत् राजधानी बाहर पैर संकोचकर, हाथ पसारकर कायोत्सर्ग करे।
12. बारहवीं प्रतिमा एक दिन की-चौविहार तेला करे, ग्राम यावत् राजधानी के बाहर शरीर को थोड़ा-सा आगे की ओर झुकाकर, नेत्र खुले रखकर, पैर संकोचकर, हाथ पसारकर अमूक वस्तु पर दृष्टि लगाकर ध्यान करे। देव, मनुष्य, तिर्यञ्च संबंधी उपसर्ग सहे। इस प्रतिमा के आराधन से अवधि-मनःपर्यय-केवलज्ञान -इन तीन में से एक ज्ञान होता है और आसन से चल जावे तो पागल बन जावे, दीर्घकाल का रोग पावे, केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट बने। (इन कुल बारह प्रतिमाओं का काल आठ मास का है।)

तेरहवें बोले - तेरह क्रियास्थान

1. अर्थदण्ड- कुछ प्रयोजन से होने वाली जीव हिंसा।
2. अनर्थदण्ड- बिना किसी प्रयोजन से होने वाली जीव हिंसा।
3. हिंसादण्ड- संकल्पपूर्वक किसी प्राणी को मारना।
4. अकस्मात्दण्ड- उपयोग के बिना अकस्मात् (Accidentally) जीवघात हो जाना।
5. दृष्टि-विपर्यासदृष्टि- दृष्टि या बुद्धि के विभ्रम से जीवघात हो जाना। जैसे-दुश्मन जानकर मित्र को मार डालना।
6. मृषावाद-प्रत्ययिक- असत्य भाषण करना।
7. अदत्तादान-प्रत्ययिक- चोरी करना।
8. अध्यात्म-प्रत्ययिक- बाहरी निमित्त के बिना मन में हिंसा का भाव उत्पन्न होना।
9. मान-प्रत्ययिक- गर्व करना।
10. मित्रदोष-प्रत्ययिक- माता-पिता, मित्र वर्ग को अल्प अपराध पर भी भारी दण्ड देना।
11. माया-प्रत्ययिक- कपट करना।
12. लोभ-प्रत्ययिक- लोभ करना।
13. ईर्यापथिक- निर्दोष संयमधारी, कषाय रहित मुनि को यतनापूर्वक

गमनागमनादि से लगने वाली क्रिया।

चौदहवें बोले - जीव के चौदह भेद

1. सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, 2. सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त,
3. बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, 4. बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त,
5. बेइन्द्रिय अपर्याप्त, 6. बेइन्द्रिय पर्याप्त,
7. त्रेन्द्रिय अपर्याप्त, 8. त्रेन्द्रिय पर्याप्त,
9. चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, 10. चतुरिन्द्रिय पर्याप्त,
11. असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, 12. असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त,
13. संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, 14. संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त।

पन्द्रहवें बोले - पन्द्रह परमाधार्मिक देव

1. अम्ब, 2. अम्बरीष, 3. श्याम, 4. शबल, 5. रौद्र, 6. महारौद्र, 7. काल,
8. महाकाल, 9. असिपत्र, 10. धनुष, 11. कुंभ, 12. बालुका, 13. वैतरणी,
14. खरस्वर, 15. महाघोष।

सोलहवें बोले - सूत्रकृतांग के प्रथम श्रुतस्कंध के सोलह अध्ययन-नाम

1. समय, 2. वैतालिय, 3. उपसर्गपरिज्ञा, 4. स्त्रीपरिज्ञा, 5. नरकविभक्ति,
6. वीरस्तुति, 7. कुशीलपरिभाषा, 8. वीर्याध्ययन (वीर्य), 9. धर्म, 10. समाधि,
11. मोक्षमार्ग (मार्ग), 12. समवसरण, 13. याथातथ्य (यथातथ्य), 14. ग्रंथ,
15. यमकीय (जमतीत), 16. गाथा।

सत्तरहवें बोले - सत्तरह प्रकार का असंयम

1. पृथ्वीकाय-असंयम, 2. अप्काय-असंयम, 3. तेउकाय-असंयम,
4. वायुकाय-असंयम 5. वनस्पतिकाय-असंयम, 6. बेइन्द्रिय-असंयम,
7. तेइन्द्रिय-असंयम, 8. चतुरिन्द्रिय-असंयम, 9. पंचेन्द्रिय-असंयम,
10. अजीवकाय-असंयम, 11. प्रेक्षा-असंयम, 12. उत्प्रेक्षा-असंयम,
13. अपहृत्य असंयम, 14. प्रमार्जना-असंयम, 15. मनः-असंयम, 16.
- वचन-असंयम, 17. शरीर-असंयम।

अट्ठारहवें बोले - अट्ठारह प्रकार का अब्रह्मचर्य

1. मन से- वचन से- काया से औदारिक शरीर संबंधी भोग सेवे, सेवावे और जो सेवन करते हैं उनका अनुमोदन करे (3x3=9 हुए)। वैसे ही नौ भेद वैक्रिय शरीर संबंधी त्रिकरण त्रियोग के हैं।

उन्नीसवें बोले - उन्नीस ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र के अध्ययन

1. उत्क्षिप्तज्ञात (मेघकुमार का),
2. संघाट (धन्ना सार्थवाह और विजय चोर का),
3. अंडक (मोर के अंडों का),
4. कूर्म (कछुआ और सियार का),
5. शैलक (शैलक राजर्षि और पंथक मंत्री का),
6. तुम्बक (तुंबे का),
7. रोहिणी (धन्ना सार्थवाह और चार बहुओं का),
8. मल्ली (मल्ली भगवती का),
9. माकन्दी (जिनपाल-जिनरक्षित और रयणा देवी का),
10. चन्द्र (चन्द्रमा की कला का),
11. दावद्रव (दावद्रव वृक्ष का),
12. उदकज्ञात (जितशत्रु राजा और सुबुद्धिप्रधान / खाई के गंदे पानी का),
13. मंडूक (नन्दमणिकार का),
14. तेतलिपुत्र (तेतलिपुत्र और पोट्टिला का),
15. नन्दीफल (नन्दीवृक्ष का),
16. अमरकंका (द्रौपदी का),
17. आकीर्ण (समुद्र अश्वों का),
18. सुंसुमा (सुसीमादारिका का),
19. पुण्डरीक (पुंडरीक-कुंडरीक का)।

बीसवें बोले - बीस असमाधि के स्थान

1. दव-दव (जल्दी-जल्दी) करते हुए चले।
2. पूजे बिना चले।
3. अयोग्य रीति से पूजे।
4. पाट-पाटला ज्यादा रखे।

5. बड़ों के, गुरुजनों के सामने बोले (अपमान करे)।
6. वृद्ध-स्थविर गुरु का उपघात/अवहेलना करे (मृतप्रायः करे)।
7. भूतों (एकेन्द्रिय जीवों) का व्यर्थ उपघात करे।
8. पलपल में क्रोध करे।
9. हमेशा क्रोध में जलता रहे।
10. दूसरे के अवगुण खोले-चुगली-निंदा करे।
11. निश्चयकारी भाषा बोले।
12. नया क्लेश खड़ा करे।
13. उपशमे (मिटे) हुए क्लेश को फिर चेतावे।
14. अकाल में स्वाध्याय करे।
15. सचित्त रज-सहित हाथ आदि से गोचरी करे।
16. एक प्रहर रात्रि बीतने पर भी जोर-जोर से बोले।
17. गच्छ में भेद/फूट डाले।
18. क्लेश फैलाकर गच्छ में परस्पर दुःख उपजावे।
19. दिन उगने से अस्त होने तक हरदम आहार लिया ही करे।
20. अनेषणिक अप्रासुक आहार लेवें।

इक्कीसवें बोले - इक्कीस प्रकार के शबल (भारी) दोष

1. हस्तकर्म करे।
2. मैथुन सेवे।
3. रात्रिभोजन करे।
4. आधाकर्मी भोगे।
5. राजपिण्ड भोगे।
6. पाँच बोल सेवे-खरीदा हुआ, उधार लिया हुआ, दुर्बल से छीन कर लिया हुआ, खास मालिक की अनुमति बिना लिया हुआ, स्थान पर सामने लाया हुआ आहार वगैरह देवे और साधु उसे लेवे (साधु को देने के लिए ही खरीदा होवे, स्वाभाविक तो सब खरीदा जाता है)।
7. बारंबार त्याग करे और भंग करे।
8. एक मास में तीन बार कच्चा जल का स्पर्श करे-नदी उतरे।
9. छः-छः महीना में गण-संप्रदाय पलटे-पलटना नहीं चाहिये।

10. एक मास में तीन बार माया-कपट करे।
11. जिसके मकान में रहे हों उसी के यहाँ से आहार करे-शय्यातर पिण्ड भोगे।
12. जान-बूझकर हिंसा करे।
13. जान-बूझकर झूठ बोले।
14. जान-बूझकर चोरी करे।
15. जान-बूझकर सचित्त पृथ्वी पर शयन आसन करे।
16. जान-बूझकर सचित्त मिश्र पृथ्वी पर शय्या वगैरह करे।
17. सचित्त शिला तथा जिसमें छोटे-छोटे जन्तु रहे वैसे- काष्ठ प्रमुख वस्तु पर अपना शयन आसन लगावे।
18. जान-बूझकर दस जाति की सचित्त वस्तु खावे-मूल, कंद, स्कंध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज।
19. एक साल में दस बार सचित्त जल का स्पर्श करे-नदी उतरे।
20. एक साल में दस माया-कपट सेवे।
21. सचित्त जल से भीगे हुए हाथ से आहारादि गृहस्थ देवे, उसे जान-बूझकर लेकर भोगे।

बाईसवें बोले - बाईस प्रकार के परीषह

1. क्षुधा, 2. तृषा, 3. शीत, 4. उष्ण, 5. दंशमशक, 6. अचेल, 7. अरति, 8. स्त्री, 9. चर्या, 10. निषद्या, 11. शय्या (उपाश्रय का), 12. आक्रोश, 13. वध (प्राणनाश), 14. याचना, 15. अलाभ (मांगी हुई वस्तु का नहीं मिलना), 16. रोग, 17. तृणस्पर्श, 18. जल्ल (पसीना तथा मैल), 19. सत्कार-पुरस्कार, 20. प्रज्ञा, 21. अज्ञान, 22. दर्शन।

तेईसवें बोले - सूत्रकृतांग के तेईस अध्ययन

- प्रथम श्रुतस्कंध के 16 अध्ययन सोलहवें बोलवत्, दूसरे श्रुतस्कंध के सात अध्ययन-
1. पुण्डरीक (सफेद कमल), 2. क्रियास्थान, 3. आहारपरिज्ञा, 4. अप्रत्याख्यानक्रिया, 5. अनगारश्रुत, 6. आर्द्रिय, 7. नालंदीय।

चौबीसवें बोले - चौबीस प्रकार के देवता

10 भवनपति, 8 व्यंतर, 5 ज्योतिषी, 1 वैमानिक।

पच्चीसवें बोले - पंच महाव्रत की पच्चीस भावना

पहले महाव्रत की पाँच भावना

1. ईर्या भावना, 2. मन भावना, 3. वचन भावना, 4. एषणा भावना, 5. आयाण-भण्डमत्त-निकखेवणा भावना।

दूसरे महाव्रत की पाँच भावना

1. बिना विचारे नहीं बोलना, 2. क्रोध से नहीं बोलना, 3. लोभ से नहीं बोलना, 4. भय से नहीं बोलना, 5. हास्य से नहीं बोलना।

तीसरे महाव्रत की पाँच भावना

1. सदोष उपाश्रय टालकर, निर्दोष उपाश्रय में ठहरना, 2. तृण, काष्ठ, कंकर आदि बिना अनुज्ञा नहीं लेना, 3. ऊँची-नीची, खड्डे, खोचर वाली भूमि को सुधरवाकर नहीं भोगना, 4. सँविभाग पूर्वक आहार करना, 5. गुरु की, वृद्ध की, रोगी की, तपस्वी की, नवदीक्षित की, आचार्यजी की, उपाध्यायजी की विनय वैय्यावच्च करना।

चौथे महाव्रत की पाँच भावना

1. स्त्री*, पशु, पण्डग (नपुंसक) वाले स्थान पर नहीं रहना, 2. स्त्री* सम्बन्धी विकारोत्पादक चर्चा वार्ता नहीं करना, 3. स्त्री* के अंगोपांग नहीं निरखना, 4. पूर्व अवस्था में भोगे गए कामभोगों को याद नहीं करना, 5. नित्यप्रति सरस-सरस आहार नहीं करना।

पाँचवें महाव्रत की पाँच भावना

1-5. मनोज्ञ-अमनोज्ञ शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श पर राग-द्वेष नहीं करना।

छब्बीसवें बोले - छब्बीस अध्ययन

दस दशाश्रुतस्कंध के, छः बृहत्कल्प के और दस व्यवहार सूत्र के (इनमें साधु का विधिवाद है)।

सत्ताईसवें बोले - सत्ताईस साधु के गुण

पाँच महाव्रत, पाँच इन्द्रिय का निग्रह करना, चार कषाय पर विजय करना (5+5+4=14), 15. भावसत्य, 16. करणसत्य, 17. जोगसत्य, 18. क्षमा,

◆ साध्वियाँ “स्त्री” के स्थान पर “पुरुष” बोलते हैं।

19. वैराग्य, 20. मनःसमाधारणता, 21. वचनसमाधारणता, 22. कायसमाधारणता, 23. ज्ञान, 24. दर्शन, 25. चारित्र, 26. वेदना-सहिष्णुता, 27. मरण-सहिष्णुता।

अट्ठाईसवें बोले - अट्ठाईस आचारकल्प

1. पहला- एक मास का प्रायश्चित्त, 2. दूसरा- एक मास और पाँच दिन का, 3. तीसरा- एक मास और दस दिन का- इस तरह पाँच-पाँच दिन बढ़ाते हुए पाँच महिने तक कहना, इस प्रकार पच्चीस उद्घात्य हैं, 26. अनुद्घात्य आरोपण, 27. कृत्स्न-संपूर्ण, 28. अकृत्स्न-अपूर्ण।

उन्तीसवें बोले- उन्तीस पाप सूत्र

1. भौमशास्त्र, 2. उत्पातशास्त्र, 3. स्वप्नशास्त्र, 4. अंतरिक्ष- आकाशशास्त्र, 5. अंगशास्त्र, 6. स्वरशास्त्र, 7. व्यंजनशास्त्र, 8. लक्षणशास्त्र- ये आठ सूत्ररूप*, आठ वृत्तिरूप, आठ वार्तिकरूप- कुल चौबीस हुए, 25. विकथा अनुयोग, 26. विद्या अनुयोग, 27. मंत्र अनुयोग, 28. योग अनुयोग, 29. अन्यतीर्थिकप्रवृत्त अनुयोग।

तीसवें बोले - महामोहनीय कर्मबंधन के तीस स्थान

1. त्रस जीव को जल में डुबाकर मारे।
2. त्रस जीव को श्वास रूंध के (रोक कर) मारे।
3. त्रस जीव को बाड़े में बंद करके मारे।
4. तलवारादि से (शस्त्र से) मस्तकादि अंगोपांग काटे।
5. मस्तक पर गीला चमड़ा बांधकर मारे।
6. छल-कपट करके गले में फांसा डालकर मारे-विश्वासघात करे।
7. कपट करके अपना अनाचार, दुष्ट आचार छिपावे, सूत्रार्थ छिपावे।
8. स्वयं कुकर्म करे और दूसरे निरपराधी मनुष्य पर आरोप लगावे तथा

◆ अंगशास्त्र के सिवाय शेष सात की सहस्र पद-प्रमाण रचना को सूत्र कहते हैं।

उन्हीं सूत्रों की लाख-पद प्रमाण व्याख्या को वृत्ति कहते हैं।

उस वृत्ति की कोटि-पद प्रमाण व्याख्या को वार्तिक कहते हैं।

अंगशास्त्र में एक लाख सूत्र हैं, एक करोड़ प्रमाण वृत्ति हैं और अपरिमित वार्तिक है।

- दूसरे की यशकीर्ति घटाने को झूठा कलंक लगावे।
9. लोक में अच्छा दिखने के लिए, क्लेश बढ़ाने के लिए, सभा के बीच में मिश्र भाषा बोले।
 10. राजा का भंडारी-राजा की लक्ष्मी हरण करना चाहे, राजा की रानी से कुशील सेवन करना चाहे, राजा के प्रेमीजनों के मन को पलटना चाहे तथा राजा को राज्याधिकार से बाहर करना चाहे।
 11. विषयलम्पटी बनकर- बाल ब्रह्मचारी नहीं होकर भी अपने आप को बाल ब्रह्मचारी कहे, स्त्री सुखों में गृद्ध होकर स्त्रियों के वश में रहे।
 12. ब्रह्मचारी नहीं होते हुए भी ब्रह्मचारी कहलावे।
 13. नौकर मालिक की लक्ष्मी लूटे तथा लुटावे।
 14. जिस पुरुष ने अपने को धनवान, इज्जतवान, अधिकारी बनाया-उस उपकारी की ईर्ष्या परिणाम से बुराई करे, हल्का बनाने की चेष्टा करे, उपकार का बदला अपकार से देवे।
 15. भरण-पोषण करने वाले राजादि को तथा ज्ञानदाता गुरु को हने।
 16. देश के स्वामी, निगम (विशाल नगर) के नेता अथवा महायशस्वी सेठ की हिंसा करे।
 17. बहुत से प्राणियों के आधारभूत मनुष्य की हिंसा करे।
 18. संयम लेने को तैयार हुआ है उसका दिल हटावे तथा संयम लिये हुए को धर्म से भ्रष्ट करे।
 19. तीर्थकर के अवर्णवाद बोले।
 20. तीर्थकर प्ररूपित न्यायमार्ग का द्वेषी बनकर (उस मार्ग की) निंदा करे तथा उस मार्ग से लोगों का मन दूर हटावे।
 21. सूत्र, विनय के सिखाने वाले आचार्य-उपाध्याय की निंदा करे, उपहास करे।
 22. आचार्य-उपाध्याय के मन को आराधे नहीं तथा अहंकार भाव से भक्ति नहीं करे।
 23. अल्प शास्त्रज्ञान का जानकार होते हुए भी खुद की तारीफ करे तथा स्वाध्याय का वाद करे।
 24. तपस्वी नहीं होते हुए भी तपस्वी कहलाये।
 25. शक्ति होते हुए भी गुरु, स्थविर, ग्लान-मुनि का विनय, वैयावच्च करे नहीं और कहे कि इन्होंने मेरी वैयावच्च नहीं की थी, ऐसी अनुकम्पा जैन संस्कार पाठ्यक्रम भाग-9

रहित होवे।

26. चार तीर्थ में भेद पड़े, ऐसी कथा-क्लेशकारी वार्ता करे।
27. अपनी तारीफ के लिए तथा दूसरे के साथ मित्रता करने के लिए अधर्मिक एवं हिंसा युक्त निमित्त वशीकरण आदि योगों का प्रयोग करे।
28. मनुष्य तथा देव संबंधी भोग अतृप्तपने से, अत्यंत आसक्त परिणाम से सेवे।
29. महाऋद्धिवान-महायश के धनी देवों के ऋद्धि, द्युति (कान्ति), यश, वर्ण, बल, वीर्य आदि का अवगुण-अपवाद बोले।
30. अज्ञानी जनता में सर्वज्ञ की तरह पूजा, प्रतिष्ठा प्राप्त करने की इच्छा से चार जाति के देव को न देखते हुए भी “ये मुझे दिखाई देते हैं” इस प्रकार कहे।

इकतीसवें बोले - इकतीस गुण सिद्ध भगवान् के

आठ कर्मों की इकतीस प्रकृतियाँ नष्ट होने से जो गुण प्रकट होते हैं वे निम्नलिखित हैं-

ज्ञानावरणीय-कर्म की पाँच प्रकृतियों के क्षय (नष्ट होने) से-

1. क्षीण आभिनिबोधिकज्ञानावरण,
2. क्षीण श्रुतज्ञानावरण,
3. क्षीण अवधिज्ञानावरण,
4. क्षीण मनःपर्ययज्ञानावरण,
5. क्षीण केवलज्ञानावरण।

दर्शनावरणीय-कर्म की नौ प्रकृतियों के क्षय से-

1. क्षीण निद्रा,
2. क्षीण प्रचला,
3. क्षीण निद्रानिद्रा,
4. क्षीण प्रचलाप्रचला,
5. क्षीण स्त्यानर्द्धि,
6. क्षीण चक्षुदर्शनावरण,
7. क्षीण अचक्षुदर्शनावरण,
8. क्षीण अवधिदर्शनावरण,

9. क्षीण केवलदर्शनावरण।

वेदनीय-कर्म की दो प्रकृतियों के क्षय से-

1. क्षीण सातावेदनीय, 2. क्षीण असातावेदनीय।

मोहनीय-कर्म की दो प्रकृतियों के क्षय से-

1. क्षीण दर्शनमोहनीय, 2. क्षीण चारित्रमोहनीय।

आयु-कर्म की चार प्रकृतियों के क्षय से-

1. क्षीण नैरयिकायु, 2. क्षीण तिर्यञ्चायु, 3. क्षीण मनुष्यायु, 4. क्षीण देवायु।

नाम-कर्म की दो प्रकृतियों के क्षय से-

1. क्षीण शुभनाम, 2. क्षीण अशुभनाम।

गोत्र-कर्म की दो प्रकृतियों के क्षय से-

1. क्षीण उच्चगोत्र, 2. क्षीण नीचगोत्र।

अन्तराय-कर्म की पाँच प्रकृतियों के क्षय से-

1. क्षीण दानान्तराय, 2. क्षीण लाभान्तराय, 3. क्षीण भोगान्तराय, 4. क्षीण उपभोगान्तराय, 5. क्षीण वीर्यान्तराय।

बत्तीसवें बोले - बत्तीस प्रकार का योग संग्रह*

1. लगे हुए पापों की आलोचना करने का संग्रह करना।
2. दूसरे के लिए हुए प्रायश्चित्त को और किसी को नहीं कहने का संग्रह करना।
3. विपत्ति आने पर भी धर्म में दृढ़ रहने का संग्रह करना।
4. निरपेक्ष तप करने का संग्रह करना।
5. सूत्रार्थ ग्रहण करने का संग्रह करना।
6. शरीर की सजावट-श्रृंगारादि टालने का संग्रह करना।
7. यश, ख्याति, पूजादि के लिए अपने तप को प्रकट न करने का संग्रह करना।
8. निर्लोभी होने का संग्रह करना।
9. बाईस परीषह सहने का संग्रह करना।
10. साफ दिल-सरल रहने का संग्रह करना।
11. सत्य, संयम रखने का संग्रह करना।

◆ योग संग्रह के द्वारा मोक्ष की साधना सुचारू रूप से सम्पन्न होती है।

12. सम्यक्त्व निर्मल रखने का संग्रह करना।

13. समाधि सहित रहने का संग्रह करना।

14. पंच आचार पालने का संग्रह करना।

15. विनय करने का संग्रह करना।

16. धैर्य रखने का संग्रह करना।

17. वैराग्य रखने का संग्रह करना।

18. मायाचार न करने का संग्रह करना।

19. विधिपूर्वक अच्छे अनुष्ठान का संग्रह करना।

20. आस्रव रोकने का संग्रह करना।

21. आत्मा के दोष टालने का संग्रह करना।

22. सब विषयों से विमुख रहने का संग्रह करना।

23. अहिंसादि मूलगुणों का प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण) करने का संग्रह करना।

24. इन्द्रिय-निरोध आदि उत्तरगुणों का प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण) करने का संग्रह करना।

25. द्रव्य से उपधि, भाव से गर्व, मूर्च्छा आदि के त्याग का संग्रह करना।

26. अप्रमादी बनने का संग्रह करना।

27. प्रतिक्षण अपनी समाचारी के परिपालन में सावधान रहने का संग्रह करना।

28. धर्म और शुक्ल ध्यान की प्राप्ति के लिए आस्रव द्वारों का संवर करने का संग्रह करना।

29. मारणान्तिक रोग उपजने पर मन को क्षुभित नहीं बनाने का संग्रह करना।

30. संग (परिग्रह) को त्यागने का संग्रह करना।

31. अपने दोषों की शुद्धि के लिए नित्य प्रायश्चित्त करने का संग्रह करना।

32. आराधिक पण्डित मरण हो, वैसी आराधना करने का संग्रह करना यानि अप्रशस्त योगों का निरूधन करना।

तैंतीसवें बोले - तैंतीस प्रकार की आशातना

1. शैक्ष* साधु रात्निक* साधु के अतिनिकट होकर चले।
2. शैक्ष साधु रात्निक साधु से आगे चले।
3. शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ बराबरी से चले।
4. शैक्ष साधु रात्निक साधु के अतिनिकट खड़ा रहे।
5. शैक्ष साधु रात्निक साधु के आगे खड़ा रहे।
6. शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ बराबरी से खड़ा रहे।
7. शैक्ष साधु रात्निक साधु के अतिसमीप बैठे।
8. शैक्ष साधु रात्निक साधु के आगे बैठे।
9. शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ बराबरी से बैठे।
10. शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ बाहर विचारभूमि के लिए निकलता हुआ यदि शैक्ष रात्निक साधु से पहले आचमन (शौच-शुद्धि) करे।
11. शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ बाहर विचारभूमि के लिए या विहारभूमि के लिए निकलता हुआ यदि शैक्ष साधु रात्निक साधु से पहले आलोचना करे और रात्निक साधु पीछे करे।
12. कोई साधु रात्निक साधु के साथ पहले से बात कर रहा हो, तब शैक्ष साधु रात्निक साधु से पहले ही बोले और रात्निक साधु पीछे बोल पावे।
13. रात्निक साधु रात्रि में या विकाल में शैक्ष साधु से पूछे कि आर्य! कौन सो रहे हैं और कौन जाग रहे हैं? यह सुनकर भी यदि शैक्ष साधु अनसुनी करके कोई उत्तर न देवे।
14. शैक्ष साधु अशन, पान, खादिम या स्वादिम लाकर पहले किसी अन्य शैक्ष साधु के सामने आलोचना करे, पीछे रात्निक साधु के सामने करे।
15. शैक्ष साधु अशन, पान, खादिम या स्वादिम लाकर पहले किसी अन्य शैक्ष साधु को दिखलावे, पीछे रात्निक साधु को दिखावे।
16. शैक्ष साधु अशन, पान, खादिम या स्वादिम, आहार लाकर पहले किसी अन्य शैक्ष साधु को भोजन के लिए निमंत्रण देवे, पीछे रात्निक साधु को निमंत्रण देवे।

◆ नवदीक्षित या अल्प दीक्षा-पर्याय वाले।

* अधिक दीक्षा पर्याय वाले।

17. शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार को लाकर रात्निक साधु से बिना पूछे किसी को देवे।
18. शैक्ष साधु अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार लाकर रात्निक साधु के साथ भोजन करता हुआ यदि उत्तम भोज्य पदार्थों को जल्दी-जल्दी बड़े-बड़े कवलों से खावे।
19. रात्निक साधु के द्वारा कुछ कहे जाने पर यदि शैक्ष साधु उसे अनसुनी करे।
20. रात्निक साधु के द्वारा कुछ कहे जाने पर यदि शैक्ष साधु अपने स्थान पर ही बैठे हुए सुने।
21. रात्निक साधु के द्वारा कुछ कहे जाने पर 'क्या कहा' इस प्रकार से यदि शैक्ष साधु कहे।
22. शैक्ष साधु रात्निक साधु को 'तुम' कहकर (तुच्छ शब्द से) बोले।
23. शैक्ष साधु रात्निक साधु से चप-चप करता हुआ उदंडता से बोले।
24. शैक्ष साधु रात्निक साधु के कथा करते हुए 'तहत्ति' आदि शब्दों से अनुमोदना न करे।
25. शैक्ष साधु रात्निक के द्वारा धर्मकथा कहते समय 'तुम्हे स्मरण नहीं' इस प्रकार से बोले।
26. शैक्ष साधु रात्निक के द्वारा धर्मकथा कहते समय 'बस करो' इत्यादि कहे।
27. शैक्ष साधु रात्निक के द्वारा धर्मकथा कहते समय परिषद् को भेदन करे।
28. शैक्ष साधु रात्निक साधु के धर्मकथा कहते हुए उस सभा के नहीं उठने पर दूसरी या तीसरी बार भी उसी कथा को कहे।
29. शैक्ष साधु यदि रात्निक साधु के शय्या-संस्तारक को पैर से टुकरावे।
30. शैक्ष साधु यदि रात्निक साधु के शय्या या आसन पर खड़ा, बैठा या सोया होवे।
31. शैक्ष साधु यदि रात्निक साधु से ऊँचे आसन पर बैठे।
32. शैक्ष साधु यदि रात्निक साधु से समान आसन पर बैठे।
33. रात्निक साधु के कुछ कहने पर शैक्ष साधु अपने आसन पर बैठा-बैठा ही उत्तर देवे।

सेवं भंते! सेवं भंते!



कथा विभाग

1. सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र

सरयू नदी के किनारे अयोध्या नाम की सुरम्य नगरी में हरिश्चंद्र नामक राजा थे। राजा न्याय नीति सम्पन्न थे। उनकी कीर्ति यश पताका दिग्-दिगन्त तक फैली हुई थी। उनका राज्य सत्य का राज्य कहलाता था। उनकी रूप-गुणशील सम्पन्न तारा नाम की रानी थी।

इंद्र द्वारा प्रशंसा- एक बार देवलोक में इंद्र द्वारा राजा हरिश्चंद्र के सत्य गुण की प्रशंसा की गई। इंद्र ने कहा- मृत्युलोक में अयोध्या का राजा हरिश्चंद्र सत्यवादी है जैसे साक्षात् सत्य ही हरिश्चंद्र के रूप में है। जिस प्रकार मेरु पर्वत अचल है उसी प्रकार हरिश्चंद्र का सत्य भी अचल है। राजा हरिश्चंद्र को सत्य से विलग करने में कोई भी समर्थ नहीं है। सत्य पालन में हरिश्चंद्र अद्वितीय है। उसकी समानता करने वाला दूसरा कोई नहीं है।

इंद्र द्वारा हरिश्चंद्र की प्रशंसा सुनकर देव, देवी, अप्सरादि तो प्रसन्न हुए किन्तु एक देव को प्रशंसा अच्छी नहीं लगी। वह देव क्रोध, ईर्ष्या और द्वेष से भर गया। उसे मृत्युलोक के मनुष्य की प्रशंसा सुनना अपमान लगा। तब उस देव ने हरिश्चंद्र को सत्य से डिगाने के लिए कुछ अप्सराओं का सहयोग लेने की युक्ति सोची।

षडयंत्र- अयोध्या नगरी में विश्वामित्र नाम के ऋषि का आश्रम था जो तपस्वी होने के साथ-साथ प्रचण्ड क्रोधी स्वभाव वाले थे। देव ने विश्वामित्र को राजा हरिश्चंद्र पर क्रोधित करने की योजना बनाई। उसने अप्सराओं को ऋषि के आश्रम में भेजा तथा आदेश दिया- विश्वामित्र के उपवन को यत्र-तत्र नष्ट करो। विश्वामित्र के क्रोध से तुम किंचित भय न करना, वे जो दण्ड दे उसको सहन करती हुई राजा हरिश्चंद्र की शरण लेना। वह तुम्हें दण्ड के कष्ट से मुक्त कर देगा। बस तुम्हारा इतना ही काम है।

देव का आदेश पाकर वे अप्सराएँ विश्वामित्र के आश्रम में क्रीड़ाएं करती हुई उपवन को नष्ट करने लगीं। ऋषि शिष्यों ने उन्हें रोका परन्तु वे न मानीं। शिष्यों का जब उन अप्सराओं पर वश न चला तो वे गुरु विश्वामित्र के पास पहुँचे तथा ऋषि से कहा- अप्सराएँ उपवन नष्ट कर रही

हैं तथा हमारे मना करने पर भी अपना अधिकार बताते हुए हँस-हँस कर हमारा उपहास कर रही हैं। कृपया आप ही उपवन की रक्षा कीजिए। शिष्यों की बात सुनते ही ऋषि की आंखें क्रोध से लाल हो गईं। वे तुरन्त उपवन की ओर गए तथा तीव्र क्रोधपूर्वक अप्सराओं को अपने कृत्य के लिए माफी मांगने के लिए कहा। अप्सराएँ बिल्कुल भी भयभीत न हुई बल्कि ऋषि का ही उपहास करने लगीं। उनके इस प्रकार के व्यवहार से ऋषि का क्रोध और बढ़ गया और उन्होंने अपने तप के प्रभाव से इन अप्सराओं को लताओं के द्वारा वृक्षों से बाँध दिया।

नित्य की तरह राजा हरिश्चंद्र राज्य कार्य से निवृत्त होकर घूमने निकले। तब वह देव भी एक सेवक का रूप बनाकर राजा के साथ हो गया तथा वह राजा को युक्ति पूर्वक उपवन की ओर ले गया। राजा हरिश्चंद्र को आते देखकर अप्सराएँ जोर-जोर से क्रन्दन करने लगीं, जिससे आकृष्ट होकर राजा उपवन में गए तथा अप्सराओं से बंधन का कारण जाना। राजा ने कहा- ऋषि के आश्रम में विघ्न करना उचित नहीं है। तुम्हारे क्रीड़ा आमोद-प्रमोद के लिए नगर में अन्य स्थल की कमी नहीं है, फिर भी ऋषि मुनि का कार्य दण्ड देने का नहीं है, दण्ड देने का कार्य तो मेरा है। राजा ने अपने सत्य के प्रभाव से उन्हें मुक्त कर दिया तथा भविष्य में ऐसा कृत्य न करने का आदेश दिया। अप्सराएँ हरिश्चंद्र के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए अपने स्थान लौट गईं।

न्यायसभा में विश्वामित्र- शिष्यों ने ऋषि मुनि को सूचना दी कि राजा हरिश्चंद्र ने अप्सराओं को मुक्त कर दिया है। इतना सुनते ही ऋषि का क्रोध भड़क गया। राजा पर क्रोध करने के कारण वे रात भर सो न सके। प्रातःकाल होते ही ऋषि राजा के सम्मुख न्याय हेतु उपस्थित हो गए। राजा ऋषि के सम्मान में जैसे ही सिंहासन से उतरने लगे तो ऋषि रोषपूर्वक बोले- मैं यह पूजा या सम्मान पाने नहीं आया हूँ। यहाँ तुम न्यायाधीश हो, मैं न्याय कराने आया हूँ। राजा ने ऋषि को आसन दिया तथा सम्मान के साथ पूछा- कहिए महाराज! आप किस बात का न्याय चाहते हैं? आदेश दीजिए!

ऋषि बोले- जिस प्रकार तुम राजा हो उसी प्रकार हम भी योगी हैं। जैसा तुम्हारा राज्य पर अधिकार है वैसा हमारा आश्रम पर अधिकार है। जिस प्रकार राज्य में अपराध करने वाले को दण्ड राजा देता है उसी प्रकार आश्रम

में अपराध करने वाले को मैं दण्ड दे सकता हूँ या नहीं? हरिशचंद्र- ऋषिवर! आश्रम राज्य सीमा के ही अन्तर्गत है। अतः वहाँ अपराध करने वाला राज्य में अपराध करने वाला होगा तथा राज्य द्वारा ही वह दण्डित होगा। इसलिये यह अधिकार राजा को या राज्य द्वारा नियुक्त कर्मचारी को प्राप्त है।

विश्वामित्र- हमने अपराधियों को तप बल से बांध दिया। लेकिन मेरे प्रतिद्वंद्वी ने मेरी अवज्ञा कर उन्हें छोड़ दिया। अब छोड़ने वाला अपराधी है या नहीं?

राजा- ऋषिवर कल यह कार्य तो मैंने ही किया था। वे अप्सराएँ वृक्ष लता से बँधी हुई दुःख पाती हुई करुण क्रन्दन कर रही थी अतः दया करके मैंने छोड़ दिया। यह केवल दया ही नहीं वरन् मेरा कर्तव्य भी था कि अनाधिकृत रूप से यदि किसी को बन्दी बनाकर रखे तो बन्दी को मुक्त कर बन्दी बनाने वाले को उचित दण्ड भी दूँ। मैंने तो केवल उन्हें छोड़ा है। कोई अपराध नहीं किया है।

विश्वामित्र यह सुनकर निराश हो गए। असमंजस में पड़ गए कि राजा के कथन को सही मानता हूँ तो सभा में मेरा अपमान होता है। उन्हें राजभवन आने की भूल का अहसास हो गया। इसलिए किसी दूसरे उपाय से राजा को अपना अपराध स्वीकार करने के लिए बाध्य करना चाहिए। यह सोचकर भरी सभा में प्रसन्नता दिखाते हुए ऋषि बोले- तूने राजधर्म को पालने के लिए यदि अप्सराओं को छोड़ा है तो फिर सभी बातों में राजधर्म का पालन करोगे न?

हरिशचंद्र- अवश्य।

विश्वामित्र- राजधर्म में दान करना भी है। राजा से की गई याचना खाली नहीं जाती है। मैं तुमसे ससागर पृथ्वी और तेरे राज्य वैभव की याचना करता हूँ। राजा हरिशचंद्र ने प्रसन्न होकर कहा- ऋषिवर! राज्य तो क्या, अगर मेरा शरीर भी माँगते तो मैं उसे भी अर्पण कर देता।

राज्य-दान- राजा ने तत्काल सेवक को आज्ञा देकर पृथ्वी का पिण्ड (पृथ्वी दान में मिट्टी का पिण्ड दान दिया जाता है तथा जितनी पृथ्वी दान देने की होती है उसका उच्चारण किया जाता है।) तथा जल लाने को कहा।

यह देखकर विश्वामित्र चकराए तथा राजा से बोले-ससागर पृथ्वी दान देने के बाद तुम्हारे पास क्या बचेगा? अच्छी तरह सोच विचार कर दान करें।

विश्वामित्र ने राजा को अनेक प्रकार की बातों से अपराध स्वीकार करने के लिए बाध्य किया किन्तु हरिशचंद्र अपने संकल्प में दृढ़ रहे और उन्होंने राज्य का दान दे दिया। दान लेने के बाद विश्वामित्र ने कहा- दान के पश्चात दक्षिणा दिया जाना आवश्यक है। अतः दान के अनुपात में दक्षिणा भी होनी चाहिए।

हरिशचंद्र- ऋषिवर! दक्षिणा भी लीजिए। प्रधान कोष से एक हजार स्वर्ण मुद्राएं ला दो।

विश्वामित्र- (क्रोधपूर्वक) राजन् तुमने राज्य का दान दिया है या मेरा उपहास कर रहे हो। जब राज्य तुम्हारा नहीं है तो राज्य के कोषालय पर तुम्हारा अधिकार कैसे हो सकता है?

हरिशचंद्र ने तत्काल भूल स्वीकार कर क्षमा मांगी तथा विनम्रता से कहा-“ऋषिवर! एक सहस्र स्वर्ण मुद्राओं का मुझ पर आपका ऋण है। एक माह में मैं उसे अवश्य चुका दूँगा।

विश्वामित्र- जरा विचार करो राजा, यह ऋण तुम कब से चुकाओगे? राजन्! अपना हठ छोड़ दो तथा अपराध स्वीकार कर लो।

हरिशचंद्र- ऋषिवर! हठ मेरा नहीं आपका है। राज्य के लोभ से तथा कष्ट के भय से मैं सत्य का लोप करके झूठ बोलूँ? ऐसा नहीं हो सकता।

विश्वामित्र- अच्छा, तुम अपना हठ मत छोड़ो। मैं अवधपति राजा के लिए आज्ञा देता हूँ कि तू पत्नी, पुत्र सहित आज ही नगर का त्याग कर दे। एक भी पैसे की वस्तु तुझे ले जाने का अधिकार नहीं है तथा एक सहस्र स्वर्ण मुद्राएं देने में एक माह से एक भी दिन अधिक का तुम्हें अधिकार नहीं है।

राजा हरिशचंद्र का नगर त्याग- राज्य का दान कर हरिशचंद्र महल से निकलकर रानी तारा के महल में गए। रानी पुत्र सहित उपवन में गई हुई थी। राजा भी उपवन में पहुँचे तथा राजा ने आद्योपान्त वृत्तान्त रानी को सुना दिया। रानी ने राजा के कार्य की बहुत प्रशंसा की तथा अपना अहोभाग्य माना। राजा ने रानी से आग्रहपूर्वक कहा- ऋण मुक्त होने तक तुम्हें तुम्हारे पिता के यहाँ पहुँचा दूँ। तुम वन के तथा प्रवास के दुःख सहन नहीं कर सकोगी। तारा ने कहा- आपकी सेवा के बिना मैं एक क्षण भी नहीं रह सकती हूँ। आप मुझे अपने से विलग मत कीजिए।

राजा समझ गए, रानी मेरा साथ नहीं छोड़ेगी। अतः उन्होंने पुत्र सहित नगर छोड़ने के लिए तैयार होने को कहा तथा एक कोड़ी भी साथ न लेने का संकेत दिया।

नगर में यह संवाद फैलते ही प्रजा में खलबली मच गई। प्रजा विश्वामित्र को बुरा कहने लगी। राजा हरिशचंद्र के बिना होने वाले दुःख की कल्पनाओं से लोग सिहर उठे। वे विश्वामित्र को अपना सर्वस्व न्यौछावर करके अपने प्रिय राजा को रोकना चाहते थे।

इधर विश्वामित्र विचार कर रहे थे कि मैं क्या करने आया था और क्या हो गया? मैं राजा का मानमर्दन करने आया था किन्तु स्वयं ही राज्य के बंधन में बंध गया। हरिशचंद्र को दण्डित करने के स्थान पर स्वयं ही दण्डित हो गया। मैंने स्वयं ही राज्य की बेड़ी पहन ली। मेरी स्वतंत्रता को मैंने अपने हाथों खो दिया।

हरिशचंद्र, तारा और पुत्र रोहित राजसी वेश त्याग कर दीनवेश धारण कर राजमहल से बाहर निकले तथा विश्वामित्र को प्रणाम कर जाने की आज्ञा माँगी। फिर प्रजा को हित-शिक्षा देकर राजा-रानी नगर त्याग कर वन की ओर प्रस्थान कर गए।

काशी नगर में- जंगल की विपत्तियों का सामना करते हुए तीन दिन में राजा, रानी काशी पहुँचे। वहाँ एक धर्मशाला में छोटी-सी कोठरी किराए पर ली। राजा मजदूरों में शामिल हो गए तथा रानी आसपास के घरों में काम करने लगी। गरीब स्थिति में किन्तु स्वाभिमानपूर्वक रूखा-सुखा खाकर जीवन व्यतीत करने लगे।

ऋण चिन्ता- राजा-रानी मजदूरी कर जीवन-यापन कर रहे थे लेकिन विश्वामित्र का ऋण उन्हें चैन नहीं लेने देता। ऋण की चिन्ता में राजा व्यथित हो गए। अनेक उपाय करने पर भी ऋण की चिन्ता कम नहीं होती। राजा की दुःखी अवस्था रानी से देखी नहीं जाती। वह राजा को धैर्य बँधाती। राजा की चिन्ता में रानी भी दुःखी हो गई। उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। आखिरकार ऋण चुकाने का अंतिम दिन आ गया तभी विश्वामित्र कोठरी के द्वार पर पहुँच गए। विश्वामित्र क्रोधपूर्वक बोले- कहाँ है हरिशचंद्र? तारा धैर्यपूर्वक बोली- ऋषिवर! आपका ऋण अवश्य देना है। इस समय क्षमा कीजिए और कृपा करके कुछ अवधि और दे दीजिए।

विश्वामित्र- तेरा पति कहाँ है? उससे कह दे कि बाहर निकल। वह तो अंदर छुप गया है और तुझे बाहर भेजा है। मैं उससे ऋण मांगने आया हूँ। आज सूर्यास्त पूर्व मुझे ऋण चुकाए या फिर अपराध स्वीकार कर ले तो ऋण एवं राज्य दोनों छोड़ दूँगा।

तारा- महाराज हमें सत्य छोड़ने के लिए मत कहिए। हमें धन वैभव से सत्य अधिक प्रिय है। कृपा करके आप तो ऋण मुक्ति का कोई उपाय बता दीजिए। फिर भी हम ऋण न चुकाएँ तो अवश्य अपराधी हैं।

विश्वामित्र ने कहा- मैं उपाय बताता हूँ। तुम बाजार में जाकर बिको और मेरा ऋण चुकाओ।

तारा- आपने ठीक उपाय बताया महाराज, यह उपाय हमारी बुद्धि में नहीं आया था, नहीं तो आपको इतना कष्ट नहीं उठाना पड़ता। मैं आपको धन्यवाद देती हूँ तथा आप निश्चित रहिए आज ही सूर्यास्त के पूर्व हम आपका ऋण चुका देंगे।

तारा की बात सुनकर विश्वामित्र आश्चर्य चकित रह गए। मन ही मन हरिशचंद्र तारा की सत्यनिष्ठा पर धन्यवाद देने लगे।

स्व-विक्रय- सत्य की रक्षा के लिए रानी तारा एक ब्राह्मण के हाथ तथा राजा हरिशचंद्र चाण्डाल के हाथ बिक गए। दोनों ने दासत्व स्वीकार कर लिया। बालक रोहित माता के साथ रहने लगा। राजा-रानी अपने दायित्व, कर्तव्य का निर्वाह करने लगे। किन्तु ब्राह्मण पुत्र की रानी पर कुदृष्टि के कारण भोजन भी पूर्ण नहीं मिल पाता। रोहित माता के भोजन में से भोजन करता तो विचारता- मेरी माता मेरे लिए भूखी रहती है। रोहित स्वयं उद्यम कर स्वतंत्र जीवन निर्वाह की बात सोचने लगा। वह जंगल जाता, फल आदि लाता, स्वयं खाता और माता को भी खिलाता।

इधर राजा हरिशचंद्र चाण्डाल के यहाँ श्मशान की रखवाली करते हुए (दासत्व का कार्य) समय व्यतीत करने लगे।

विपत्ति वज्र- राजा-रानी के जीवन का क्रम शांति से चल रहा था। किन्तु वह दुष्ट देव जिसने हरिशचंद्र को सत्य से भ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा की थी, वह विश्वामित्र के क्रोध द्वारा जब सत्य से भ्रष्ट नहीं कर सका तब उसने तारा से उसका पुत्र छीनने का कुटिल उपाय सोचा।

रोहित नित्य की तरह वन में गया किन्तु देवमाया से उसे एक भी वृक्ष

पर फल प्राप्त नहीं हुआ। भूख से विकल होकर वह एक वृक्ष के नीचे बैठ गया एवं परमात्मा का स्मरण करने लगा। तभी एक सुंदर आम्रफल पेड़ से नीचे गिरा वह उसने खा लिया। फल खाने के बाद उसे विचार आया- मैंने माता को खिलाए बिना ही फल खा लिया। मुझे भूख में इतना भी ध्यान नहीं रहा। इस प्रकार विचार करते-2 वह फलों के वृक्ष ढूँढने लगा। तभी एक फलों से लदा हुआ वृक्ष उसकी दृष्टि में आया। वह प्रसन्नता से वृक्ष की ओर बढ़ा। उसकी दृष्टि वृक्ष पर लिपटे काले भयानक सर्प पर पड़ी। रोहित ने निर्भीकता पूर्वक सर्प को हटाने का प्रयास किया किन्तु जब वह नहीं हटा तो आसपास फैली हुई डालियों को पकड़कर वह वृक्ष पर चढ़ने लगा। सर्प ने झपटकर रोहित को डस लिया। सांप के काटते ही रोहित मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। विष की भयंकरता ने रोहित के प्राण ले लिए। इधर माता रोहित का इंतजार कर रही थी।

तभी कुछ बालकों ने माता को रोहित का यह समाचार सुनाया। सुनते ही माता मूर्च्छित हो गई। होश में आने पर वह ब्राह्मण से बोली- मैं अकेली क्या करूंगी? कृपया किसी को मेरे साथ भेज दीजिए। निर्दय ब्राह्मण ने कहा- तुम्हें जाना है तो जाओ और शीघ्र अंतिम संस्कार कर लौट आओ। इस प्रकार रो-रोकर प्राण दे दोगी तो मेरी पाँच सौ स्वर्ण मुद्राओं का क्या होगा? ब्राह्मण का उत्तर सुनकर तारा ने निराश होकर बालकों को कहा- बच्चों! रोहित कहाँ है? तुम दिखा दो। बच्चों ने जंगल में जाकर विष के प्रभाव से मृत रोहित को बता दिया।

माता ने दौड़कर रोहित के शव को उठा लिया तथा विलाप करने लगी। उसके धैर्य का बांध टूटने लगा। अब तक मैं सत्य के लिए यह दुःख सहती रही लेकिन यह कष्ट मेरे लिए असह्य है। मैं भी रोहित जहाँ गया है वहाँ जाऊँगी। इस प्रकार करुण क्रंदन करने लगी। किन्तु फिर सोचा मैं क्रीत दासी हूँ। मैं मरने के लिए भी स्वतंत्र नहीं हूँ। मेरे मालिक ने कुछ समय के लिए अवकाश दिया है। अतः पुत्र की अंतिम क्रिया के लिए किसी की सहायता का विचार करने लगी। हृदय विदारक विलाप सुनकर लोग इकट्ठे हो गए। किंतु दुष्ट देव ने माया द्वारा सबको दूर कर दिया व किसी को सहायता नहीं करने दी।

सूर्य अस्त हो चुका था। अमावस्या की अंधकारमय रात्रि थी। वन में

अकेली तारा पुत्र की अंत्येष्टि की चिन्ता में बैठी थी। किसी तरह शव को कंधे पर उठाकर काशी की गलियों में जिधर से मृतकों को ले जाते देखती उस ओर चल दी। लड़खड़ाती, गिरती, पड़ती, ठोकरें खाती हुई श्मशान पहुँची।

श्मशान में- अमावस्या की घोर अंधकारमय रात्रि में हरिशचंद्र चाण्डाल के दासत्व को स्वीकार कर श्मशान की रखवाली कर रहे थे। सहसा उन्हें किसी स्त्री के रूदन की आवाज सुनाई दी। आवाज की दिशा में जा पहुँचे तथा उन्होंने पूछा- देवी! तुम कौन हो तथा श्मशान में अकेली क्यों रो रही हो? अपने समीप पुरुष की आवाज सुनकर तारा सहमी। तारा ने कहा तुम कौन हो? तुम यमराज हो क्या? मेरे पुत्र को लेने आए हो? मैं अपने पुत्र को नहीं दूँगी।

हरिशचंद्र ने कहा- मैं यमदूत नहीं, मनुष्य ही हूँ तथा श्मशान की रखवाली करता हूँ। तुम्हारे पुत्र के अंतिम संस्कार में जलाई जाने वाले लकड़ी के मूल्य के लिए तुम्हें एक टका देना पड़ेगा, तब तुम्हारे पुत्र का अंतिम संस्कार होगा। रानी ने कहा- मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। कृपा कर आप इसे बिना कर लिए ही जलाने दीजिए?

इसी वार्तालाप के बीच मेघाच्छन्न आकाश में बिजली चमकी। बिजली के प्रकाश में दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया। राजा-रानी पुत्र शोक में अधीर हो उठे तथा विलाप करते-करते मूर्च्छित हो गए। जल-कण मिश्रित शीतल पवन से उनकी मूर्च्छा दूर हुई।

अंतिम कसौटी- राजा-रानी के सामने पुत्र के दाह संस्कार की समस्या खड़ी हुई। हरिशचंद्र कहने लगे- तारा! मेरे स्वामी की आज्ञा है कि एक टका कर लिए बगैर मैं शव दहन के लिए लकड़ी नहीं दे सकता। अतः एक टका कर लाओ।

तारा- मेरे पास तो एक पैसा भी नहीं है। पुत्र का दाह संस्कार आप कर दीजिए।

हरिशचंद्र ने कहा- जिस सत्य धर्म की रक्षा के लिए हमने राज्य को त्याग दिया। तुम ब्राह्मण के हाथ बिकी, मैंने चाण्डाल का दासत्व स्वीकार किया। क्या उस सत्य धर्म को एक टके के लिए हम जाने दें ? इसलिए बिना कर के पुत्र के अंतिम संस्कार की आशा छोड़ दो और कर चुकाने का

कोई उपाय करो।

तारा ने कहा- आपका कथन यथार्थ है। आप स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन न करें। मेरे पास जो पहनने की साड़ी है। उसकी आधी साड़ी एक टके से ज्यादा की ही होगी। मैं आधी साड़ी से तन ढक लूँगी। आधी साड़ी फाड़कर जैसे ही राजा को दी वैसे ही आकाश में दिव्य प्रकाश प्रकट हो गया। देव दुर्दुभी बजने लगी। देवता पुष्प वर्षा करते हुए हरिशचंद्र तारा की जयघोष करने लगे।

आकाश से पुष्प वृष्टि, प्रकाश और जयघोष सुनकर राजा-रानी चकित रह गए। उसी समय एक देव आकाश से उतरकर आया तथा रोहित पर से अपनी माया हटाई। माया हटते ही रोहित उठ खड़ा हुआ। देव राजा-रानी से अपने अपराध की क्षमा माँगने लगा। राजा-रानी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। राजा ने कहा- मैं नहीं जानता आप कौन हैं तथा आपने क्या अपराध किया है? देव ने अपना परिचय देकर इंद्रसभा में हरिशचंद्र के सत्य की प्रशंसा तथा हरिशचंद्र को सत्यभ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा, अप्सराओं को भेजना, विश्वामित्र को क्रोधित करना, रोहित को सर्प बनकर डसना, यह सब कार्य मैंने अपने अभिमान की पूर्ति एवं ईर्ष्यावश किये किन्तु आप सत्य से विचलित नहीं हुए। मेरा अभिमान दूर हुआ। मैंने आपको बहुत कष्ट दिए। आप मुझे क्षमा कर दीजिए तथा बार-बार पश्चाताप पूर्वक क्षमा माँगने लगा।

पुनः राज्य स्थापना एवं दीक्षा- इधर राजा हरिशचंद्र के चले जाने से अवध की जनता दुःखी हो गई। विश्वामित्र प्रजा के हृदय में स्थान न पा सके। विश्वामित्र ने अपने को अपने ही जाल में फंसा पाया। निराश एवं विवश हो गए। उन्होंने प्रजा को आमंत्रित किया तथा अपने कृत्यों के लिए क्षमा मांगी तथा पुनः हरिशचंद्र को राजा बनाने की इच्छा व्यक्त की। हरिशचंद्र को पुनः राज्य सिंहासन पर आरूढ़ करने की अभिलाषा से राजा-रानी को ढूँढने के लिए वे काशी पहुँचे।

इधर काशी की जनता को बहुत पश्चाताप हुआ। हमने राजा-रानी को नहीं पहचाना। ब्राह्मण परिवार, चाण्डाल परिवार सहित समस्त नगरजनों ने राजा-रानी से क्षमा मांगी तथा पश्चाताप किया। इधर विश्वामित्र भी राजा को ढूँढते हुए काशी पहुँचे। श्मशान में प्रकाश तथा हरिशचंद्र के जयघोष का कोलाहल सुनकर वे भी वहाँ पहुँचे तथा राजा से अपने अपराध की क्षमा

माँगकर पुनः राज्य भार लेने का आग्रह करने लगे। हरिशचंद्र द्वारा दान में दी हुई वस्तु लेने का इंकार करने पर इंद्रदेव आदि ने आग्रह किया। हरिशचंद्र को पुनः राज्य में स्थापित किया गया। न्याय नीति पूर्वक राज्य करते हुए निश्चित समय पर राज्यासन पर कुमार रोहित को बैठाकर राज्याभिषेक किया। राज्यभार रोहित को सौंपकर राजा हरिशचंद्र एवं महारानी तारा ने अनेक स्त्री-पुरुषों के साथ दीक्षा ग्रहण की। अनेक प्रकार के तप त्याग करते हुए मुक्तिपथ की ओर अग्रसर हुए।

2. महासती सुभद्रा

बसंतपुर का नगर सेठ था जिनदास। उसके एक अत्यन्त रूपलावण्यवती सुशील कन्या थी- सुभद्रा! नगर भर में सुभद्रा के समान रूपवती और गुणवती कोई दूसरी कन्या नहीं थी।

चंपानगरी का एक धनाढ्य युवक व्यापार के लिए बसंतपुर में आया हुआ था। सुभद्रा के सौंदर्य ने उसे मोहित कर लिया। पता लगाकर वह सेठ जिनदास के घर पहुँचा। बात ही बात में सुभद्रा की चर्चा चली। युवक ने आश्चर्यपूर्वक पूछा- “तो क्या सुभद्रा अभी तक अविवाहित ही है ?”

“जी! विवाह के लिए तो हजारों निमंत्रण आए। पर प्यारी बिटिया की एक शर्त है?”

“क्या?”

“यही कि वह ऐसा जीवन साथी पसंद करेगी, जो उसी के समान भगवान महावीर का अनुयायी हो, धर्म का विद्वान और धर्माचरण में दृढ़ हो।”

युवक की आशाओं पर पानी गिर पड़ा। वह भी दिखने में बड़ा सुंदर था, व्यवहारकुशल था, धनाढ्य भी था, किन्तु तथागत बुद्ध का अनुयायी! सुभद्रा के पिता जिस प्रकार अपने को ‘जिनदास’ कहने में गौरव अनुभव करते, उसी प्रकार यह युवक भी बुद्ध की भक्ति में विभोर होकर अपने को ‘बुद्धदास’ कहने में गौरवान्वित समझता था। युवक ने अपनी चिंता को भीतर ही छिपा लिया और अन्य बातें करते हुए वह उठकर अपने स्थान पर चला गया। कुछ देर वह विचारों की उधेड़बुन में उलझ गया। एक ओर सुभद्रा के

दिव्य सौन्दर्य की लालसा, दूसरी ओर धर्म परिवर्तन का प्रश्न! बुद्धदास को रात भर नींद नहीं आई। सोचते-सोचते एक रास्ता उसे सूझ गया। “सुभद्रा को पाने के लिए कुछ दिन के लिए जैनधर्म स्वीकार कर लूँ?” बुद्धदास प्रातः उठते ही जैन मुनियों के पास पहुँचा। बड़ी भक्ति और श्रद्धा के साथ वह जैन धर्म का ज्ञान प्राप्त करने लगा। वह साधुओं की संगति में बैठकर ज्ञान और वैराग्य की गंभीर चर्चा करता। असली भक्ति से भी नकली भक्ति में ज्यादा आकर्षण होता है। कुछ ही दिनों में बुद्धदास सेठ जिनदास की आँखों में चढ़ गया। सुभद्रा भी जब कभी मुनियों के पास इस सुंदर युवक को तत्त्व चर्चा करते देखती तो कुछ क्षण रुक कर वह भी उसमें रस लेने लगती।

बुद्धदास की नकली भक्ति ने अपना रंग जमा लिया। सेठ जिनदास ने बुद्धदास से सम्पर्क बढ़ाया और एक दिन सुभद्रा का पाणिग्रहण बुद्धदास के साथ संपन्न हो गया। सुभद्रा भी अत्यन्त प्रसन्न थी कि रूप-यौवन धन के साथ ज्ञान-संपन्न पति पाकर वह सौभाग्यवती बनी है और बुद्धदास के तो मनमाने पासे गिर ही गए।

बुद्धदास सुभद्रा को लेकर अपने घर चंपानगरी को आया। सास-ननद आदि ने बहुरानी की बलैया ली। बिरादरी में मिठाइयाँ बांटी। सौम्य, सुंदर वधु को देखकर पूरा परिवार हर्षित हो गया।

ससुराल में पहले ही दिन सुभद्रा अपने नियमानुसार प्रातः उठी। एकांत में आसन पर बैठकर- णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं- जपने लगी। बुद्धदास की आँखें खुली, सुभद्रा अपना मंगलपाठ करती जा रही थी- “अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि”- बुद्धदास चौंक कर उठा। “हैं ! यह क्या कर रही हो? देखती नहीं, चारों ओर “बुद्धं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि” के स्वर्ण लेख लिखे हुए हैं, उन्हें नहीं पढ़ कर तुम यह क्या जपने लगी हो?”

सुभद्रा अपने मौन में थी, वह चुपचाप अपना पाठ करती रही। सास-ननद ने भी उसका यह क्रियाकांड देखा तो बस, वे तो आग-आग हो उठी। सुभद्रा को बड़ा आश्चर्य और खेद हुआ कि जो बुद्धदास जैन मुनियों के चरणों में बैठकर गंभीर धर्म चर्चा करता, वह तो कट्टर बौद्ध है और उसके रग-रग में जैनधर्म के प्रति घृणा भरी है। असहिष्णु तो इतना कि किसी को अपनी धर्मारोधना करते नहीं देख सकता। जिसे सोना समझा वह

मिट्टी निकला। जब पति की यह स्थिति है तो ननद और सास की बात ही क्या? अब पग-पग पर सुभद्रा को टोका जाने लगा। उसके धर्म और भगवान पर व्यंग्य कसे जाने लगे- “बहुरानी! महावीर का नाम मेरे घर में लिया तो खबरदार है। भगवान बुद्ध का स्मरण करो, वही तुम्हें सद्बुद्धि और सद्गति देंगे।”

सुभद्रा के धैर्य का प्याला भरने लगा। उसने विनयपूर्वक सास से कहा-“माताजी ! आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्तव्य है क्योंकि मैं आपकी बहू बनकर घर में आई हूँ। किन्तु धर्म और भगवान तो अपनी आत्मा की वस्तु है, किसी के कहने से वह मैं नहीं छोड़ सकती। और फिर मेरा धर्म आपके लिए कभी अहितकर नहीं होगा, क्या किसी के धर्म का उपहास करना और किसी को जबर्दस्ती धर्म बदलवाना मानवता है ?

सुभद्रा की बातों से सास आग-बबूला हो उठी। “अच्छा! मुझे भी तुम मानवता की बात सिखा रही हो! मेरी प्यार भरी बातों से नहीं, किन्तु बुद्धदास की लातों और डंडों से ही तेरी बुद्धि ठिकाने लगेगी।”

सास को कलह करते देखकर सुभद्रा चुप हो गई और मन ही मन णमोक्कार मंत्र जपने लगी। सुभद्रा के मौन जाप ने आग में घी का काम कर डाला। सास ने अच्छी तरह से बुद्धदास के कान भर दिए।

बुद्धदास ने सुभद्रा से कहा- “सुभद्रा! मैंने कई बार तुम्हें समझा दिया है, एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। एक घर में दो धर्म नहीं चल सकते। तुम अपना भला चाहती हो तो केवल भगवान बुद्ध का स्मरण करो, “अरिहंते सरणं” की जगह ‘बुद्धं सरणं गच्छामि’ बोला करो। इससे तुम्हारा मान-सम्मान भी बढ़ेगा, सब लोग तुम्हारा आदर करेंगे और मुझे भी तुम अधिक प्यारी लगेगी।”

सुभद्रा ने पति के चरण छूकर कहा- “पतिदेव! घर में आप जो आज्ञा करेंगे वही काम मैं कर सकती हूँ। किन्तु धर्म के विषय में आप मुझे कुछ मत कहिए। वह मैं किसी अन्य के लिए नहीं, किन्तु अपनी आत्मा के लिए करती हूँ।

बुद्धदास- “प्रिये ! मैं कभी नहीं चाहता कि तुम मेरे घर में रहकर दूसरे के भगवान को पूजो! तुम्हें मेरे ही भगवान की पूजा करनी होगी। वना तुम्हारी जिद्द तुम्हारे ही गले की फांसी बन जाएगी।”

सुभद्रा इस बार कुछ दृढ़ता के साथ बोली- “पतिदेव! यदि आपको मेरे धर्म से द्वेष है, तो फिर मुझे पाने के लिए जैन धर्म स्वीकारने का स्वांग क्यों रचा था? क्या वह छल-प्रपंच, ढोंग और धोखा सिर्फ मुझे पाने के लिए ही किया था? क्या अपने स्वार्थों के लिए मनुष्य इतना धोखा भी दे सकता है।”

बुद्धदास ने तेवर बदल कर कहा- “सुभद्रे! तुम छोटे मुंह बड़ी बात करने लगी हो। जानती हो इस जिद्द का फल क्या होगा? अपमान! कष्ट! और ! जब तक ‘बुद्धं सरणं गच्छामि’ नहीं कहोगी, मैं तुमसे नहीं बोलूंगा।”

सुभद्रा मौन होकर सुनती रही। बुद्धदास मन ही मन फुसफुसाता चला गया। सुभद्रा ने भी दृढ़ निश्चय कर लिया था, चाहे जो हो जाए, मैं धर्म को नहीं छोड़ूंगी। वह उसी प्रकार निर्भय होकर अपने व्रत-नियमों का पालन करती रही, सामायिक पाठ आदि समय पर सम्पन्न करती रही। पति, सास और घर के सभी लोग पग-पग पर सुभद्रा को तंग करने की चेष्टा करते, पर वह पत्थर बनकर सब कुछ सहती गई, इस आशा में कि समय पर सबको सद्बुद्धि आएगी और उसके संकट दूर टलेंगे।

एक दिन सुभद्रा सामायिक-पाठ आदि करके उठी ही थी कि प्रातःकाल की पुण्यवेला में एक अभिग्रहधारी मुनि को अपने घर की ओर आते देखकर पुलक उठी। उसने वन्दना कर भिक्षा ग्रहण करने की प्रार्थना की। मुनि ने भिक्षा पात्र को नीचे रखा और स्थिर होकर खड़े हो गए।

सुभद्रा ने भावपूर्वक शुद्ध आहार दिया और फिर हर्ष विभोर हो वन्दना करके मुनि के मुख की ओर देखा। मुनि की एक आंख पीड़ा से लाल होकर सूज रही थी, सुभद्रा देखकर समझ गई। एक फंटा मुनि की आंखों में लगा था। भक्ति के उद्रेक में सुभद्रा ने अपने आंचल के छोर से मुनि की आंख का तिनका निकाल दिया। मुनि चले गए और पवित्र हृदयवाली सुभद्रा भी आज के दिन को धन्य मानती हुई जैसे ही मुनि को वन्दना कर पीछे लौटी तो बस सास ने कुहराम मचा दिया। “कुलटा कहीं की! मुनि से भी नहीं चूकी। हाय! इसने तो मेरे कुल पर ही कालिख पोत दी।” बुद्धदास दौड़कर आया, पास-पड़ोस के लोग भी जमा हो गए। सुभद्रा स्तब्ध थी, यह क्या गजब हो गया? पवित्र एवं करुणार्द्र हृदय से मुनि की आंख का तिनका

निकाल देने पर कैसे आज मेरा कुल कलंकित हो गया?” वह बड़ी विकट स्थिति में थी। वह मौन, खड़ी-खड़ी देखती रही। मौका पाकर बुद्धदास ने भी मन का गुब्बार निकाला- “कलंकिनी! कुलटे! उस साधु से प्रेम था तो घर के भीतर ले जाना था, या चली जाना था उसके पीछे! क्या यही तेरे जैन धर्म ने शिक्षा दी है? मैं तेरे रूप के जाल में फंस गया। इसीलिए आज मुँह काला करना पड़ा है।”

सुभद्रा भूमि में आँखें गड़ाए मौन खड़ी रही। चारों ओर से अपशब्द की वर्षा हो रही थी। कोई उसको, कोई उसके माँ-बाप को, कोई जैन धर्म को और कोई मुनियों को कोस रहा था। बुद्धदास बोला-पहले तो साधु से आँखें मिलाते शर्म नहीं आई! और अब मुँह नीचा किए खड़ी है, जबान पर ताला लगाएगी नहीं तो क्या बोलेंगी।

सहने की भी कुछ हद होती है। सुभद्रा अपनी और अपने माता-पिता की निन्दा सुनती रही, सहती रही, पर धर्म पर आक्षेप आने लगा तो उसका हृदय रो उठा। उसने दृढ़ता पूर्वक कहा- “पतिदेव! आप सब लोग ईर्ष्या से जल रहे हैं, इसीलिए तिल का ताड़ बना रहे हैं। मैंने तो शुद्धभाव से मुनि की आँख से तिनका निकाला है, मेरे मन में कोई भी बुरी भावना नहीं थी, मैं सर्वथा निर्दोष हूँ और मेरे गुरु बड़े पवित्र और महान तपस्वी थे। आप लोग उन पवित्र साधुओं पर और महान जैन धर्म पर कलंक लगा रहे हैं। सत्य आखिर सत्य है। समय आएगा, जब असत्य के ये बादल फटेंगे और सत्य का सूर्य चमक उठेगा।”

बुद्धदास आदि सुभद्रा की बात सुनकर खिसिया उठे- पाप करके अब निर्दोष बन रही है।

सुभद्रा अब मौन थी! अपने कमरे में जाकर वह प्रभु के ध्यान में लीन हो गई। विपत्ति और संकटों का मुकाबला करने की हिम्मत उसने अपने धर्म गुरुओं से पाई थी। वह निर्भय होकर दृढ़ संकल्प के साथ प्रतीक्षा करने लगी, जब तक मेरे सिर का कलंक दूर नहीं होगा तब तक मैं आहार पानी ग्रहण नहीं करूंगी।

इस घटना के दूसरे दिन प्रातः नगर में सहसा कोलाहल मच गया। चंपानगरी के चारों दरवाजे रात्रि में अपने आप बंद हो गए, न उन पर ताला है, न कोई सांकल! पर खोले खुल नहीं रहे हैं।

घन की चोटें लगाते-लगाते पहलवानों के हाथों में छाले पड़ गए, सेना के विस्फोटक अस्त्र-शस्त्र उन्हें हिला नहीं सके और मदमस्त हाथियों की टक्करों से भी दरवाजे चूँ तक नहीं कर सके। सब लोग भयभीत थे। राजा और समस्त अधिकारी चिन्तासागर में डूबे थे। नगर पर अचानक यह क्या दैविक आपत्ति आ गई? हजारों प्रयत्न करने पर भी दरवाजे टस से मस नहीं हुए। दरवाजों पर हजारों नर-नारियों की भीड़ लगी थी। चारों ओर भय! चिन्ता! उद्भ्रांति छाई हुई थी। तभी राजा को सम्बोधित करती हुई एक आकाशवाणी सुनाई दी-“राजन्! तुम्हारे सब प्रयत्न विफल हो जाएंगे। ये दरवाजे बल और छल से नहीं खुलेंगे, इन्हें तो कोई महासती का शील-बल ही खोल सकेगा। सुनो! इस चंपानगरी में यदि कोई ऐसी सती हो, कच्चे सूत से छलनी बांधकर कुएं में से पानी निकाले और उस पानी के छींटे इन दरवाजों पर डालें तभी ये दरवाजे खुल सकते हैं, अन्यथा नहीं।”

आकाशवाणी सुनकर राजा और प्रजा में खलबली मच गई! सच ही यह कोई दैविक प्रकोप है। राजा ने नगर में घोषणा करवाई- “जो सती कच्चे सूत से छलनी बांधकर कुएं से पानी निकालेगी और नगर-द्वार खोलेगी उस महासती का समूची प्रजा उपकार मानेगी और राजा उसे अपनी धर्म-बहन बनाएंगे।

घोषणा सुनकर नगर की हजारों कुलवधुएँ इस प्रयत्न में जुट गईं। किंतु कच्चे सूत से छलनी बांधकर पानी निकालना, छलनी बांधना तो असंभव सा था। दोपहर से संध्या हो गई, नगर के कुओं पर कुलनारियों का जमघट लगा था और कच्चे सूत एवं छलनियों के अंबार लगे थे, पर किसी का भी प्रयत्न सफल नहीं हो पा रहा था। संध्या होते-होते सुभद्रा ने भी उद्घोषणा सुनी। उसके मन में प्रेरणा जगी- “यह स्वर्ण अवसर आया है, जब मैं अपने शील धर्म का परिचय देकर नगर का संकट दूर करूँ और अपने धर्म पर लगे कलंक को मिटाऊँ।” सुभद्रा संकल्प करके उठी। सास के पास आई और प्रणाम करके बोली “माताजी! आप मुझे आशीष दीजिए! मैं अपने शील-धर्म के बल पर नगर की विपत्ति टालने का प्रयत्न करूँ।”

सास कड़वी हंसी हंसी हुई बोली- “तेरे जैसी सतियाँ ही तो इस नगर का बेड़ा पार लगाएंगी।

सुभद्रा ने धीरता के साथ कहा- “माताजी! आपके मन में झूठा भ्रम हो

गया है, मैं इसी को दूर करूंगी। मैं अपने व्रत में सच्ची हूँ, मेरा धर्म और देव-गुरु सच्चे हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि मैं नगर का संकट दूर करके आपके कुल की निर्मल कीर्ति में चार चांद लगाऊंगी। मुझे रोकिए मत, जाने दीजिए!”

“जा जा! बड़ी-बड़ी राजरानियां और सेठानियां तो अपना सा मुंह लेकर आ गई, तू भी जा अपने कुल का नाम डुबोकर आ जा! सास ने तिरस्कारपूर्वक सुभद्रा की ओर देखकर कहा।

सुभद्रा का हृदय दृढ़ विश्वास से हिलोरे ले रहा था। उसे अपने धर्म एवं नियम पर अडिग आस्था थी। सास को प्रणाम कर अरिहंत का नाम लेकर वह चल पड़ी।

भीड़ को चीरती हुई सुभद्रा कुएँ पर पहुँची। पास-पड़ोस वाली अनेक कुलनारियाँ कनखियों से झांक कर सुभद्रा पर हंस रही थी- “यह आई है सती जैन मुनि के साथ दुराचार करने वाली नई महासती!”

सुभद्रा सब कुछ सुनती रही। कच्चा सूत लेकर चलनी को बांधा और मन में नवकार मंत्र का स्मरण किया, फिर हाथ जोड़कर संकल्प किया- “मैंने मन-वचन-कर्म से शुद्ध शील व्रत का पालन किया है तो यह छलनी पानी से भर कर बाहर आ जाओ!” बस, दृढ़ संकल्प के साथ सुभद्रा ने छलनी को कुएं में डाला और देखते ही देखते पानी से छलाछल भरी हुई छलनी बाहर आ गई। व्यंग्य और मजाक करने वाली नारियों के मुंह पर ताले लग गए। हजारों लोग आश्चर्यपूर्वक देख रहे थे। तभी राजा और मंत्री दौड़कर आए- “चलिए महासती! अपने शीलव्रत का चमत्कार दिखाइए, इस जल को नगर द्वार पर छिड़ककर नगरी का उद्धार कीजिए।”

आगे-आगे सुभद्रा थी। पीछे राजा, मंत्री और अपार नर-नारियों की उमड़ती भीड़! सुभद्रा पूर्व दिशा के द्वार पर पहुँची। नवकार मंत्र का स्मरण कर उच्च स्वर से बोली-“अरिहंत मेरे देव हैं, निर्ग्रंथ मेरे गुरु हैं, उन द्वारा प्ररूपित सत्य-अहिंसा-संयम रूप मेरा धर्म है। मैं आज तक अखण्ड रूप से अपने धर्म, नियम एवं शील का पालन करती आई हूँ। यदि मैं अपने शील में सच्ची हूँ, तो जल के छींटे लगते ही नगर के द्वार खुल जाएँ।”- इन्हीं शब्दों के साथ सुभद्रा ने दरवाजों पर जल छिड़का और खड़-खड़ते हुए दरवाजे खुल पड़े। सती सुभद्रा के जय-जयकार से धरती और आकाश गूँज

देखा, वह आज देख लिया।

प्रशंसा अहंकार को जगाती है। गौतम ने भी जन-जन के मुखोच्चारित प्रशंसा-शब्दों को सुना। सोचा- “यह हुआ मेरे ज्ञान, मेरी विद्वत्ता, मेरे पांडित्य का साक्षात् चमत्कार। मैं जानता था, मैं सर्वज्ञ हूँ, अब सभी जान गए। सबको मानना पड़ेगा कि मेरे जैसा ज्ञानी दूसरा कोई नहीं है।”

वह सोमिल से बोला - “हमने तुम्हारे यज्ञ का अनुष्ठान कर तुम्हारे भाग्य को जगा दिया है। हमारे ज्ञानबल से देवतादि भी तुम्हारे यज्ञ में अपना भाग ग्रहण करने साक्षात् सशरीर आ रहे हैं।”

विमान निकट, निकटतर, निकटतम आए और अगले ही कुछ क्षणों में फरारते भरते हुए यज्ञ-स्थल के ऊपर होते हुए आगे चले गए। सबने देखा यह, सभी के स्वर मंद पड़ गए, मंत्रोच्चार में अब वह उत्साह तेज नहीं रह गया। सभी हताश और निराश हो गए।

देव विमान कहीं और! भ्रांति मिटी तो अचरज बढ़ा- कुछ ही क्षणों पश्चात् देव-विमान किसी निकटस्थ स्थान पर उतरते दिखाई पड़े। इन्द्रभूति अचरज में पड़ गए। देव-विमान यज्ञ स्थल पर क्यों नहीं उतरे? आगे क्यों चले गए? क्या वे मार्ग भूल गए? पर गए तो इधर से ही थे। क्या उनकी स्मरण शक्ति चूक गई है?

इन्द्रभूति को आश्चर्य तो था ही अब आवेश भी आ गया। उसने अपने विद्यार्थी शिष्यों को कहा- “तुममें से कुछ छात्र जाओ और छानबीन कर बताओ कि बात क्या है?”

जो देखा, अविस्मरणीय देखा- शिक्षार्थी वहाँ गए तो वहाँ जो कुछ आश्चर्यजनक देखा उसे अपने गुरुदेव इन्द्रभूति को सुनाते हुए बोले - “वहाँ सर्वज्ञ श्रमण भगवान महावीर पधारे हुए हैं। उन्हें केवल्यज्ञान की प्राप्ति हुई है। देवों द्वारा उन्हीं के समवसरण की रचना की गई है। समस्त देवगण वहीं पधारे हैं।”

कौन है यह महावीर? - यह सुनकर इन्द्रभूति का तेज अचानक मंद पड़ गया। अन्दर का अहंकार भी कुछ नीचे उतर गया, पर आवेशभाव क्रोध में बदलने लगा। मन में सोचा- “सर्वज्ञ तो मैं हूँ, यह सर्वज्ञ कहाँ से आ गया? लगता है कोई बहुत बड़ा मायावी, ऐन्द्रजालिक (इन्द्रजालिया) है जिसने देवों तक को छल लिया है। मैं अभी जाकर देवों के भ्रम को दूर

करता हूँ। ऐसे-ऐसे जटिल प्रश्नों की झड़ी लगाता हूँ कि उसकी सर्वज्ञता का आवरण छत्र से टूटकर बिखर जाएगा।

चले इन्द्रभूति, प्रभु महावीर के समवसरण की ओर। अपने पांडित्य के अनुरूप पीतवस्त्र, यज्ञोपवीत आदि उन्होंने धारण कर रखे थे। पाँच सौ शिष्यों का समुदाय उनके पीछे था। उनका कमंडल किसी एक शिष्य के हाथ में था तो एक अन्य शिष्य छत्र लिए हुए उनके साथ चल रहा था। वे सभी शिष्य इन्द्रभूति की जयकार करते हुए चल रहे थे।

ये महावीर ही अंतिम तीर्थंकर हैं!- चलते हुए जब वे समवसरण के निकट पहुँचे तो दंग रह गए। अष्ट महाप्रतिहार्य और अलौकिक ऐश्वर्य, महावीर और इस समवसरण ने उस पंडित को एक पल के लिये मूढ़ बना दिया। वे सीढ़ियों के निकट ही अचल खड़े हो अपलक प्रभु को निहारने लगे। सोचा- ‘यह मैं कहाँ आ गया? यह महावीर हैं या ब्रह्मा? पर ब्रह्मा तो वृद्ध हैं तो क्या विष्णु हैं? पर विष्णु तो श्याम रंग के हैं और ये तप्त स्वर्ण जैसे स्वर्णिम रंग के। महेश्वर ये हो नहीं सकते क्योंकि वे तो संहारक हैं और इनका चेहरा तो अमृत रस का झरना है। सूर्य के समान तेजस्वी हैं पर सूर्य नहीं हैं क्योंकि सूर्य तो जला देता है और ये तो शांत हैं। चन्द्र भी ये नहीं क्योंकि चन्द्र तो सकलंक है और ये निष्कलंक हैं। कामदेव अशरीरी हैं अतः कामदेव भी ये हो नहीं सकते, तो क्या ये ही सर्वगुण सम्पन्न और सभी दोषों से रहित अंतिम तीर्थंकर हैं? निश्चित ही ऐसा ही है तो फिर मेरा यहाँ आना निष्फल हो जाएगा। अब बिना कुछ बोले वापस जाता हूँ तो मेरा तो सारा अर्जित-यश मिट्टी में मिल जाएगा। लोग मुझे ‘पलायन करने वाला’ कहेंगे। बड़ी भूल कर दी मैंने यहाँ आकर। लौटकर जा नहीं सकता और इन्हें परास्त कर नहीं सकता। अब तो कोई चमत्कार ही मेरे यश, मेरे मान-सम्मान की रक्षा कर सकता है।’

सागयं सु आगतं- इधर गौतम की यह विचारधारा चल ही रही थी कि तभी प्रभु ने कहा- ‘इन्द्रभूति गौतम! “सागयं सु आगतं”। अर्थात् इन्द्रभूति गौतम! ‘स्व-पर’ कल्याणकारी होने से तुम्हारा आगमन अच्छा है लाभकारी है। प्रभु तो सर्वज्ञ थे, जानते थे कि ये दीक्षा लेकर अपनी आत्मा के साथ ही जन-जन के लिए कल्याण का पथ भी प्रशस्त करेंगे।

इन्द्रभूति ने सोचा- ‘आश्चर्य है! ये मेरा नाम भी जानते हैं।’ पर कुछ

ही पलों बाद विचार आया- 'मेरे नाम को कौन नहीं जानता। मेरे पांडित्य के कारण सारी दुनिया मुझे जानती है।' उनके अन्दर के अहंभाव ने पुनः सिर उठा लिया था। यह भी मोहकर्म के उदय का प्रताप है।

मन की शंका का समाधान- तभी प्रभु बोले- "गौतम! क्या तुम्हारे मन में यह शंका है कि आत्मा का अस्तित्व है या नहीं? जब वह घट-पट आदि की तरह प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता तो उसका अस्तित्व नहीं है, ऐसा ही मानना चाहिए। क्या यही बात तुम्हारे मन में है?"

गौतम भाव-विभोर हो गए। "अरे कितना समय हो गया था इस पर चिन्तन करते-करते पर आज तक मैंने मन में उठ रही इस शंका को प्रकट नहीं किया था, किसी को बताया नहीं था, फिर भी प्रभु ने उसे जान लिया।" गौतम मान गए कि महावीर निश्चय ही सर्वज्ञ हैं।

मैं की अनुभूति ही आत्मा है- प्रभु इस पर बोले- "इन्द्रभूते! तुम्हारे अंतर में जीव के अस्तित्व और अनास्तित्व की जो ऊहापोह है, उसी से सिद्ध होता है कि जीव है। तुम्हारे मन में यह जो संशय उठा उसका मूल कारण यह है कि तुमने वेद की ऋचाओं के वास्तविक अर्थ को हृदयंगम नहीं किया। वहाँ आया है-

न ह वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति अशरीरं वा वसंतप्रियाप्रिये न स्पृशतः।'

-छान्दोग्योपनिषद्, 445

जहाँ से शंका उत्पन्न हुई वह कौन है? वही तो आत्मा है। तुम जब कहते हो- मैं आया, मैं गया, मैं प्रसन्न हूँ, मैं यह करना चाहता हूँ, तो इन सब में, यह 'मैं' कौन है? 'अहं ब्रह्मोस्मि! यही जो 'मैं' की अनुभूति है। वही मैं हूँ, वही आत्मा है।

गौतम प्रभु चरणों में समर्पित- शंका का समाधान हो गया। आए थे इन्द्रभूति वहाँ प्रभु को परास्त करने पर स्वयं को समर्पित कर बैठे प्रभु के चरणों में। आए थे शत्रुभाव लेकर, पर नतमस्तक हो गए। मिथ्यात्व की कारा को तोड़कर सम्यग्दर्शन के सुखासन पर आसीन हो गये। तन और मन से पंचांग नमाकर बोले- "प्रभु! आप सर्वज्ञ हैं, आपने मेरे मन की गहराई में छिपी शंकाओं का समाधान कर मेरे मन को संतुष्टि प्रदान की है। भगवन्! मैं अब इन पावन चरणों की शरण को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी जाना नहीं

चाहता। आपने मेरे अन्तर के ज्ञान-चक्षुओं को पूर्णतः खोल दिया है अतः मेरा यह जीवन आपको समर्पित है। मैं आप ही की तरह का साधक जीवन आपके सान्निध्य में बिताना चाहता हूँ।"

अहासुहं देवाणुप्पिए- "हे गौतम ! तुम्हें जैसा सुख उपजे वैसा करो, धर्मकार्य में क्षण मात्र का भी विलम्ब मत करो।"

पाँच सौ शिष्य भी प्रभु-चरणों में समर्पित- गौतम के साथ थे उनके पाँच सौ विद्यार्थी-शिष्य। वे अपने शिष्यों की ओर उन्मुख होकर बोले- "मुझे तो आज मेरे सच्चे गुरुवर की प्राप्ति हो गई है। आज से मेरा समस्त जीवन इन्हीं की चरण-शरण में अर्पित रहेगा। आप सभी एक लम्बे समय तक मेरे पास रहकर वेद-वेदांत का अध्ययन करते रहे। आज से आप लोग किसी अन्य के पास जाकर विद्याध्ययन करना चाहें तो जा सकते हैं, जिसकी जैसी भावना हो वह वैसा करो।"

शिष्य भी गुरु की तरह समर्पित भाव रखने वाले थे। बोले- "गुरुवर! जो आपके गुरु, आज से वही हमारे भी गुरु। आपकी इस साधना-यात्रा में हम भी आपके साथ ही रहेंगे, आपकी सेवा-शुश्रूषा करते हुए महावीर के इसी साधना पथ पर चलेंगे।"

इन्द्रभूति गौतम अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ प्रभु चरणों में समर्पित हो गये, उन्होंने जगत् के जीवों के कल्याण हेतु प्रभु से अनेकों प्रश्नों का समाधान किया, वे आज भी आशिक रूप से उपलब्ध हैं। वे गणधर बने और प्रभु निर्वाण के पश्चात केवलज्ञान को प्राप्त कर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हुए।



कहते हैं। इस काल में पुद्गलों के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श हीन होते जाते हैं और अशुभ भाव बढ़ते जाते हैं।

2. **उत्सर्पिणी काल**- जिस काल में जीवों के संहनन और संस्थान क्रमशः अधिकाधिक शुभ होते जाएं, आयु और अवगाहना बढ़ती जाए तथा उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम की वृद्धि होती जाय वह उत्सर्पिणी काल कहलाता है। जीवों की तरह पुद्गलों के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श भी इस काल में क्रमशः शुभ होते जाते हैं। अवसर्पिणी काल की समाप्ति पर उत्सर्पिणी काल और उत्सर्पिणी काल की समाप्ति पर अवसर्पिणी काल आता है। अनादि काल से यह क्रम चलता आ रहा है और अनन्त अनागत काल तक यही क्रम चलता रहेगा।

छः आरों का वर्णन

उत्सर्पिणी काल दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का है और अवसर्पिणी काल भी दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का है। दोनों मिलकर बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का एक काल चक्र होता है। काल चक्र के कुल बारह आरे हैं। प्रत्येक काल के छह आरे हैं। अवसर्पिणी काल के छह आरों का विवरण यहाँ दिया जा रहा है-

अवसर्पिणी काल

पहला आरा : सुखमा-सुखम

चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम का 'सुखमा-सुखम' (एकान्त सुख) नाम का पहला आरा होता है। इस आरे में मनुष्य का शरीर तीन कोस का, आयु तीन पल्योपम की होती है। उतरते आरे में दो कोस का शरीर, दो पल्योपम का आयुष्य होता है। मनुष्य के शरीर में 256 पृष्ठ करंड (पासली व हड्डी) और उतरते आरे के वक्त 128 पसलियां होती हैं। वज्रऋषभ नाराच संहनन, समचतुरस्र संस्थान होता है। दम्पति खूबसूरत, सरल स्वभावी, उत्तम लक्षण से युक्त होते हैं। तीन दिन के अंतर से आहार की इच्छा होती है। प्रकृति प्रदत्त कल्प वृक्षों के द्वारा ही जीवन निर्वाह होता है। वे अपने शरीर परिमाण में कल्पवृक्ष के फल आदि का आहार करते हैं (पहले आरे में तुअर के दाने के बराबर आहार करते हैं। दूसरे आरे में बेर के बराबर, तीसरे में आंवले के बराबर आहार करते हैं। ऐसा ग्रन्थकार बताते हैं। मनोवाञ्छित

पदार्थों की पूर्ति करने वाले वृक्ष को 'कल्पवृक्ष' कहते हैं।

उनके दस भेद हैं :-

- (1) मतंगा - शरीर के लिए पौष्टिक रस देने वाले।
- (2) भृतंगा - पात्र आदि देने वाले।
- (3) त्रुटितांगा - वाद्यंत्र देने वाले।
- (4) दीपांगा - दीपक का काम देने वाले।
- (5) ज्योतिरिंगा - सूर्य के समान प्रकाश देने वाले। अग्नि को भी ज्योति कहते हैं। अतः अग्नि का भी काम देने वाले।
- (6) चित्रांगा - विविध विभिन्न प्रकार के फूल देने वाले।
- (7) चित्ररसा - विविध विभिन्न प्रकार का भोजन देने वाले।
- (8) मण्यंगा - आभूषण देने वाले।
- (9) गेहागार - मकान के आकार में परिणत होने वाले (42 मंजिल के) आवास-मकान रूप कल्पवृक्ष भी होते हैं।
- (10) अणियणा - वस्त्रादि देने वाले।

मिट्टी का स्वाद गुड़, खांड, शक्कर से भी मीठा होता है।

(1) प्रथम आरे के स्त्री-पुरुष का आयुष्य छः महीने शेष रह जाता है, उस समय परभव का आयुष्य बांधते हैं और षड्मास आयु शेष रहने पर ही युगलिनी एक पुत्र-पुत्री के जोड़े को जन्म देती हैं। उनपचास दिन तक उनका लालन-पालन करने के बाद वे समझदार और स्वावलंबी हो जाते हैं फिर वे सुखोपभोगानुभव करते हुए विचरते हैं। इनके माता-पिता क्रम से छींक और उबासी आने से मरकर देवगति में जाते हैं। क्षेत्र अधिष्ठित देव उन युगल के मृतक शरीर को क्षीर-समुद्र में प्रक्षेप कर मृत्यु संस्कार करते हैं। इस आरे में वैर, शोक, ईर्ष्या, जरा रोग आदि कुछ भी नहीं होता। ये सुख इन्हें पूर्व भव के दान, पुण्यादि सत्कर्मों के परिणाम स्वरूप प्राप्त होते हैं।

दूसरा आरा : सुखम

प्रथम आरे की मर्यादा समाप्ति होते ही तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम का सुखम नामक दूसरा आरा आरम्भ होता है। इस समय पहले से वर्ण, गंध,

रस, स्पर्श के पुद्गलों की उत्तमता में अनन्तगुणहीनता हो जाती है। इस आरे में मनुष्य का देहमान दो कोस का व आयुष्य दो पल्योपम का होता है। उतरते आरे में एक कोस का शरीर व एक पल्योपम का आयुष्य रह जाता है। पृष्ठ करंड (पसलियां) 128, उतरते 64 रह जाती हैं। मनुष्यों में वज्र ऋषभ नाराच संहनन व समचतुरस्र संस्थान रह जाता है। दो दिन के अंतर से आहार की इच्छा होती है। शरीर प्रमाण आहार करते हैं। पृथ्वी का स्वाद शर्करा जैसा रह जाता है दस प्रकार के कल्पवृक्ष से जीवन निर्वाह करते हैं। मृत्यु के जब छः महिने बाकी रह जाते हैं, तब युगलिनी एक पुत्र-पुत्री का प्रसव करती हैं। चौसठ दिन के लालन-पालन के पश्चात वे दम्पति बन सुखोपभोग करते हुए विचरते हैं। उनके माता-पिता क्रमशः छींक, उबासी आने पर मरकर देवगति में जाते हैं। क्षेत्राधिष्ठित देव इनके मृतक शरीर को क्षीर सागर में डालकर मृतक क्रिया करते हैं। इस आरे में वैर, ईर्ष्या, शोक, जरा, रोग आदि नहीं होते हैं। यह प्रभाव दान, पुण्यादि सत्कर्मों का होता है।

तीसरा आरा : सुखम-दुःखम

दूसरे आरे की समाप्ति पर दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम का तीसरा आरा प्रारम्भ होता है एवं पूर्वापेक्षा वर्ण, गंध, रस, स्पर्श की उत्तमता में न्यूनता आ जाती है। मनुष्यों का देहमान एक कोस, आयुष्य एक पल्योपम का रह जाता है। उतरते आरे में 500 धनुष का देहमान एक क्रोड़ पूर्व का आयुष्य रह जाता है। वज्र ऋषभ नाराच संहनन, समचतुरस्र संस्थान होता है। शरीर में 64 पसलियां, उतरते आरे 32 पसलियां रह जाती हैं। एक दिन के अंतर से आहार की इच्छा होती है। शरीर प्रमाण आहार करते हैं। पृथ्वी का स्वाद गुड़ जैसा, उतरते आरे कुछ न्यून रह जाता है। कल्प वृक्षों से जीवन निर्वाह करते हैं। मृत्यु के छः महिने अवशेष रहने पर परभव का आयुष्य बांधते हैं एवं युगलिनी एक पुत्र व पुत्री का प्रसव करती हैं। 79 दिन लालन-पालन करते हैं, फिर वे दम्पति बन सुखोपभोग करते हुए विचरते हैं। एक को छींक दूसरे की उबासी आते ही मरकर देवगति में जाते हैं। क्षेत्राधिष्ठित देव इनके मृतक शरीर को क्षीर सागर में डालकर मृतक क्रिया करते हैं। इनमें वैर, ईर्ष्या, रोग, शोक, जरा, कुरूपता नहीं होती। परिपूर्ण अंगोपांग पाकर सुखयापन करते हैं। पूर्व भव के सुकृत का यह शुभ फल है। उक्त तीनों आरे के स्थलचर और

खेचर तिर्यच भी युगलिक होते हैं। इन तीनों आरों में युगलिकों का केवल युगल धर्म रहता है।

तीसरे आरे के तीन विभागों में से दो विभागों में उक्त रचना रहती है। इस आरे के छयासठ लाख करोड़, छयासठ हजार करोड़, छयासठ करोड़, छयासठ लाख, छयासठ हजार, छयासठ सौ, छयासठ (66, 66, 66, 66, 66, 66, 66, 66, 66, 66) सागरोपम बीत जाने पर काल स्वभाव से कल्पवृक्षों से पूरी वस्तुएं प्राप्त नहीं होती। इसलिए युगलिक पुरुषों में परस्पर झगड़ा होने लगता है। इस विवाद को मिटाने के लिए तथा व्यवस्था बनाए रखने के लिए 15 कुलकरों की उत्पत्ति होती है। ये कुलकर अपने-अपने समय के प्रभावशाली बुद्धिमान पुरुष होते हैं। ये तत्कालीन समाज के व्यवस्थापक और मर्यादा पुरुष होते हैं।

प्रारंभ के पाँच कुलकरों के समय तक 'हकार' की दण्ड नीति प्रचलित होती है। अर्थात् जब कोई व्यक्ति किसी प्रकार का अशोभनीय कार्य करता है, तो उसे कुलकर 'हा' ऐसा शब्द कहते हैं। इसका अर्थ होता है कि 'हा' यह तुमने क्या किया वे उसके कार्य पर खेद प्रकट करते हैं। अपराधी के लिए यही दण्ड पर्याप्त होता है। वह स्वयं को लज्जित अनुभव करता है।

इससे आगे पाँच कुलकरों तक 'मकार' की दण्ड नीति चलती है अर्थात् अपराधी को 'मा' शब्द कह दिया जाता है। जिसका अभिप्राय है कि 'ऐसा मत करो' इस प्रकार कह देना ही अपराध का दण्ड हो जाता है। इससे आगे के पाँच कुलकरों के समय में दण्ड नीति में कुछ कठोरता आ जाती है। उस समय अपराधी को 'धिक' इस कार्य के लिए तुम्हें धिक्कार है शब्द कहकर दण्डित किया जाता है। इन दण्डों से लज्जित होकर उस समय के लोग अपराध से विरक्त हो जाते हैं।

यद्यपि कल्पवृक्षों की फलदायिनी शक्ति क्रमशः क्षीण होती जाती है, तदापि इस समय तक कल्पवृक्षों से ही निर्वाह होता रहता है। लोगों को अपने निर्वाह के लिए असि, मसि, कृषि सम्बन्धी आजीविका की आवश्यकता नहीं पड़ती। अतः पहले से लगाकर तीसरे आरे के इस समय तक यह भूमि 'अकर्मभूमि कहलाती है। यहाँ मनुष्य की उत्पत्ति जोड़े से ही होती है, जोड़े से ही रहते हैं तथा इनकी स्थिति करोड़ पूर्व से अधिक होती है, इसलिए ये 'युगलिक' कहलाते हैं।

तीसरा आरा समाप्त होने में चौरासी लाख पूर्व तीन वर्ष और साढ़े आठ महिने शेष रह जाते हैं, तब अयोध्या नगरी में पंद्रहवें कुलकर से चैत्र कृष्णा अष्टमी को प्रथम तीर्थंकर का जन्म होता है। काल के प्रभाव से जब कल्पवृक्षों से कुछ भी प्राप्त नहीं होता, तब मनुष्य क्षुधा से व्याकुल होते हैं। मनुष्यों की यह दशा देखकर और दयाभाव लाकर तीर्थंकर भगवान उनके प्राणों की रक्षा के लिए वहाँ स्वभावतः उगे हुए चौबीस प्रकार के धान्य और मेवा आदि खाने को बताते हैं। कच्चा धान्य खाने से उनका पेट दुःखता है। ऐसा जानकर अरणि काष्ठ से अग्नि उत्पन्न करके उसमें धान्य पकाने को कहते हैं। भोले लोग अग्नि प्रज्वलित करके उसमें धान्य डाल देते हैं। अग्नि उसे भस्म कर देती है, उन्हें निराशा होती है और वे तीर्थंकर के पास जाते हैं। तब कुम्भकार की स्थापना करके बर्तन बनाना सिखाते हैं। चार कुल, 18 श्रेणियाँ (जातियाँ), 18 प्रश्रेणियाँ स्थापित करते हैं। पुरुषों की 72 कलाएँ, स्त्रियों की 64 कलाएँ, 18 लिपियाँ, 14 विद्याएँ सिखलाते हैं।

जीताचार के अनुसार स्वर्ग से इंद्र आकर तीर्थंकर का राज्याभिषेक करते हैं। लग्नोत्सव पाणिग्रहण करवाते हैं। ज्यों-ज्यों कुटुम्ब की वृद्धि होती है, त्यों-त्यों ग्राम, नगर आदि बसाये जाते हैं। इस प्रकार भरत क्षेत्र में आबादी बढ़ जाती है। युगलिक धर्म मिटाकर असि, मसि, कृषि, कलाएँ, विद्याएँ आदि तीर्थंकर सिखाते हैं। इस आरे में 'ऋषभ प्रभु' प्रथम तीर्थंकर हुए हैं। बीस लाख पूर्व तक वे कुमार अवस्था में रहे। 63 लाख पूर्व तक शासन किया। तदनन्तर अपने पुत्र भरत को राज्यभार सौंपकर चार हजार पुरुषों के साथ दीक्षा धारण की। संयम लेने के एक हजार वर्ष के बाद उनको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। केवल ज्ञानोत्पत्ति के बाद तीर्थ की स्थापना करते हैं। इस प्रकार प्रथम तीर्थंकर भगवान जगत् के लौकिक और लोकोत्तर कल्याण का मार्ग बताकर एक लाख पूर्व तक संयम पालकर अष्टापद पर्वत पर पद्मासन से स्थित होकर, दस हजार साधुओं के परिवार से निर्वाण को प्राप्त हुए।

प्रथम तीर्थंकर के समय राजकुल में प्रथम चक्रवर्ती का भी जन्म होता है। तीर्थंकर के समान चक्रवर्ती की माता भी 14 स्वप्न धूमिल देखती है। भरत चक्रवर्ती का देहमान 500 धनुष का और आयुष्य 84 लाख पूर्व का होता है। वे चालीस लाख अष्टापदों के बल के धारक होते हैं और फिर भरत क्षेत्र के छह खण्डों पर एक छत्र शासन करते हैं।

चौथा आरा : दुःखम-सुखम

तीसरे आरे की समाप्ति पर दुःखम-सुखम नामक चौथा आरा प्रारंभ होता है। इसमें दुःख की प्रचुरता, सुख की न्यूनता होती है। बयालिस हजार वर्ष कम एक क्रोड़ा-क्रोड़ी सागरोपम तक यह आरा चलता है वर्णादि शुभ पुद्गलों की अनन्त गुणा हानि होती है। देहमान घटते-घटते 500 धनुष का, आयुष्य क्रोड़ पूर्व का रह जाता है। उतरते आरे सात हाथ का देहमान, दो सौ वर्ष में कुछ कम का आयु रह जाता है। मनुष्यों के शरीर में 32 पसलियाँ, उतरते आरे 16 पसलियाँ रह जाती हैं। इस आरे में संहनन 6, संस्थान 6, पाँचों गतियों में जाने वाले मनुष्य होते हैं। 23 तीर्थंकर, 11 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव, 9 प्रतिवासुदेव इसी आरे में होते हैं। औदारिक शरीर के पुद्गलों का किसी निश्चित दृढ़ता के साथ एकत्र रहने को संहनन कहते हैं। शरीर की आकृति को संस्थान कहते हैं।

वासुदेव- वासुदेव पूर्व भव में तप संयम का पालन करते हुए निदान करते हैं और आयु पूर्ण होने पर स्वर्ग या नरक का एक भव करके उत्तम कुल में अवतरित होते हैं। उनकी माता को सात उत्तम स्वप्न आते हैं। युवावस्था को प्राप्त कर राज्य सिंहासन पर बैठते हैं। वासुदेव पद की प्राप्ति के समय सात रत्न उत्पन्न होते हैं। (1) सुदर्शन चक्र, (2) अमोघ खड्ग, (3) कौमुदी गदा, (4) पुष्पमाला, (5) अमोघ धनुष बाण शक्ति, (6) कौस्तुभ मणि, (7) महारथा। बीस लाख अष्टापदों का बल इनके शरीर में होता है। अमोघ प्रतिवासुदेव को मारकर उनके राज्य के अधिकारी बनते हैं। वासुदेव का तीन खण्ड पर एक छत्र राज्य होता है। बलदेव वासुदेव के बड़े भाई होते हैं। बलदेव की माता 4 उत्तम स्वप्न देखती है। बलदेव-वासुदेव के पिता एक ही होते हैं किन्तु माताएं अलग-अलग होती हैं। दोनों भाइयों में अत्यन्त प्रेम होने से साथ-साथ रहते हैं। दस लाख अष्टापदों का बल इनके शरीर में होता है। वासुदेव की मृत्यु के बाद बलदेव संयम धारण करते हैं और आयु का अंत होने पर स्वर्ग या मोक्ष में जाते हैं।

चौथे आरे के 75 वर्ष साढ़े आठ महिने शेष रहने पर अंतिम तीर्थंकर प्रभु महावीर प्राणत देवलोक से च्यवकर उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में क्षत्रिय कुंड नगर में ऋषभदत्त ब्राह्मण के यहां देवानंदा की कुक्षी में उत्पन्न हुए। 83वीं रात्रि को शकेन्द्र की आज्ञा से हरिणगमैषी देव सिद्धार्थ राजा के यहां त्रिशला

रानी की कुक्षि में महावीर के जीव का प्रक्षेप करता है। चैत्र शुक्ल तेरस को भगवान का जन्म होता है। यौवनावस्था आने पर यशोदा के साथ पाणिग्रहण, प्रियदर्शना पुत्री का जन्म और 30 वर्ष की आयु में प्रव्रज्या अंगीकार की। 12 वर्ष 6 माह 15 दिन तक कठिन तप ध्यान करके वैशाख शुक्ल दशमी को सुव्रत नामक दिन, विजय मुहूर्त में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र, शुभ चन्द्रमा के मुहूर्त में, वियंता नामक पिछले प्रहर में, जृम्भिका नगर के बाहर जुबालिका नदी के उत्तर दिशा तट पर शालिवृक्ष के समीप गोदूह आसन में केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त किया। केवली पर्याय में 29 वर्ष, साढ़े पाँच मास विचरते रहे। चौथे आरे के 3 वर्ष, साढ़े आठ मास अवशेष रहने पर भगवान कार्तिक अमावस्या को स्वाति नक्षत्र में निर्वाण पधारे। भगवान के पाँच कल्याणक उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में हुए। भगवान महावीर के निर्वाण के बाद 64 वर्ष तक केवलज्ञान रहा। गौतम स्वामी 12 वर्ष, सुधर्मास्वामी 8 वर्ष, जम्बुस्वामी 44 वर्ष केवली पर्याय में रहे।

जम्बुस्वामी के निर्वाण के बाद 10 बोलों का विच्छेद हो गया- (1) केवल ज्ञान, (2) मनः पर्याय ज्ञान, (3) परमावधि ज्ञान, (4) परिहार विशुद्धि चारित्र, (5) सूक्ष्म संपराय चारित्र, (6) यथाख्यात चारित्र, (7) पुलाक लब्धि, (8) आहारक शरीर, (9) क्षपक-उपशम श्रेणी (मतान्तर से क्षायिक सम्यक्त्व), (10) जिन कल्पी।

पाँचवां आरा - दुःखम

इक्कीस हजार वर्ष का यह दुःखम नामक पाँचवां आरा प्रारंभ होता है। इस आरे में दुःख की विपुलता होती है। चौथे आरे की अपेक्षा वर्ण, गंध, रस, स्पर्श के पुद्गलों में अनन्तगुणी हीनता आ जाती है। आयु घटते-घटते सौ वर्ष झाङ्गेरा, देहमान सात हाथ, 16 पसलियाँ और उतरते 20 वर्ष की आयु, दो हाथ का शरीर, आठ पसलियाँ रह जाती हैं। इस आरे में 6 संहनन, 6 संस्थान होते हैं। इस आरे में मोक्ष नहीं होता। चौथे आरे में जन्में मनुष्य पाँचवें आरे में मोक्ष जा सकते हैं।

पाँचवें आरे के लक्षण के 32 बोल

(1) नगर गांव सरीखे, (2) ग्राम श्मशान जैसे (3) सुकुलोत्पन्न दास-दासी बनते हैं, (4) यम जैसे क्रूर दण्ड देने वाले राजा होते हैं, (5) प्रधान लालची होते हैं, (6) कुलीन स्त्रियाँ दुराचारी हो जाती हैं, (7) कुलीन जैन संस्कार पाठ्यक्रम भाग-9

स्त्री वैश्या के समान कर्म करने वाली होती हैं, (8) पुत्र पिता की आज्ञा नहीं मानने वाला होता है, (9) शिष्य गुरु की निंदा करने वाले होते हैं। (10) दुर्जन लोग सुख में रहेंगे (11) सज्जन लोग दुःखी रहेंगे। (12) दुर्भिक्ष अधिक पड़ेगा। (13) सर्प, बिच्छु, दंश, मच्छर आदि क्षुद्र जीवों की उत्पत्ति अधिक मात्रा में होगी। (14) ब्राह्मण लोभी होंगे। (15) हिंसा को धर्म बताने वाले अधिक होंगे। (16) एक मत के अनेक मतान्तर होंगे। (17) मिथ्यात्व की वृद्धि होगी (18) पाखण्डियों की पूजा होगी (19) देव-दर्शन दुर्लभ होंगे। (20) वैताद्व्य पर्वत के विद्याधरों की विद्या का प्रभाव मंद पड़ेगा। (21) दुग्ध आदि सरस वस्तुओं की स्निग्धता कम होगी। (22) पशु अल्पायु होंगे। (23) चातुर्मास योग्य क्षेत्र कम रह जाएंगे। (24) साधु की 12, श्रावक की 11 प्रतिमा पालन करने वाला कोई नहीं रहेगा। (25) गुरु शिष्य को नहीं पढ़ायेंगे। (26) शिष्य अविनीत होंगे। (28) आचार्य अलग-अलग संप्रदाय स्थापित कर आत्म स्थायी (अपनी जमाने वाले) और दूसरों की उखाड़ने वाले होंगे। (29) उत्सूत्र प्ररूपणा करने वाले, लोगों को भ्रम में डाल कर फंसाने वाले नाममात्र के धर्मात्मा ज्यादा होंगे। (30) धर्मात्मा, सुशील, सरल स्वभावी लोगों की कमी होगी। (31) मलेच्छ राजा अधिक होंगे। (32) लोगों की धर्म पर प्रीति कम होगी।

इस उतरते आरे में सोना, चाँदी आदि धन का विच्छेद हो जायेगा। लोहे की धातु रहेगी। चमड़े की मोहरें चलेंगी। जिनके पास ये रहेगी वे श्रीमंत माने जाएंगे। इस समय में उपवास मासखमण के समान लगेगा। इस आरे में अधिकांश ज्ञान का उच्छेद हो जायेगा। केवल दशवैकालिक सूत्र के चार अध्ययन रहेंगे। किन्हीं का मन्तव्य है कि 1. दशवैकालिक, 2. उत्तराध्ययन 3. आचारांग और 4. आवश्यक- ये चार सूत्र रहेंगे।

इनमें चार जीव एकाभवतारी होंगे- (1) दुपसह नामक आचार्य, (2) फाल्गुनी नामक साध्वी, (3) जिनदास श्रावक, (4) नागश्री श्राविका।

पंचम आरे के अंतिम दिन अर्थात् आषाढ शुक्ल पूर्णिमा को शक्रेन्द्र का आसन चलायमान होगा तब देवेन्द्र शक्रेन्द्र आकाशवाणी करेंगे। हे भरत क्षेत्रवासियों! पाँचवां आरा आज समाप्त हो रहा है। कल छठा आरा लगेगा। सावधान हो जाओ। जो धर्म आराधना करनी हो कर लो। यह सुनकर पूर्वोक्त चारों जीव सर्व जीवों से क्षमायाचना कर निःशल्य होकर संथारा ग्रहण करेंगे।

चारों जीव सौधर्म देवलोक में पैदा होंगे। उसके अनन्तर संवर्तक-महासंवर्तक वायु चलेगी। जिससे पर्वत, गढ़, कोट, कुएँ, बावड़ी, महल आदि नष्ट हो जाएंगे। केवल वैतादय पर्वत, गंगा, सिन्धु नदी, ऋषभकूट और लवण समुद्र की खाड़ी ये पांच स्थान बचे रहेंगे। शेष सब नष्ट हो जाएंगे। पंचम आरे के अन्तिम दिन के तीसरे भाग में जैन धर्म, अन्य धर्म, राजनीति, बादर अग्नि तथा चरित्र धर्म विच्छिन्न हो जाएगा।

छठा आरा : दुःखमा-दुःखम

पाँचवें आरे की समाप्ति के अनन्तर इक्कीस हजार वर्ष का दुःखम-दुःखम नामक छठा आरा आरंभ होता है। इसमें घोरतिघोर दुःख होता है। कठोर, धूलिमलिन, दुस्सह, भयंकर संवर्तक, तीव्र गति से चलने वाली वायु चलेगी। दिशाएं प्रतिक्षण धूमिल रहेंगी। कुछ भी दिखाई नहीं देगा। काल की रूक्षता के कारण चन्द्रमा अहितकर, अपथ्यकर, शीत हिम छोड़ेंगे। सूरज अत्यंत असह्य रूप में तपेंगे। भरत क्षेत्र का अधिष्ठाता देव पंचम आरे के विनष्ट होते हुए मनुष्यों में से बीज रूप कुछ मनुष्यों को उठा ले जाता है। वैतादय पर्वत के दक्षिण और उत्तर भाग में गंगा सिंधु नदी है उनके आठों किनारे पर नौ-नौ बिल हैं। सब मिलकर 8x9=72 बिल हैं। प्रत्येक बिल में तीन मंजिलें हैं। उक्त देव उन मनुष्यों को इन बिलों में रख देता है। छठे आरे में पाँचवें आरे की अपेक्षा वर्ण, गंध, रस, स्पर्श के पुद्गलों की पर्याय में अनन्तगुणी हानि हो जाती है। क्रमशः घटते-घटते आयुष्य 20 वर्ष का और अवगाहना एक हाथ ही रह जाती है। इस आरे में अशुभ संहनन और अशुभ संस्थान रहता है। मनुष्य के शरीर में आठ पसलियाँ उतरते आरे में चार पसलियाँ रह जाती हैं। अपरिमित आहार की इच्छा होती है। रात्रि में शीत और दिन में ताप अत्यन्त प्रबल होता है। इस कारण वे मनुष्य बिलों से बाहर नहीं निकल सकते, सिर्फ सूर्योदय और सूर्यास्त के समय एक मुहूर्त के लिए बाहर निकलते हैं। उस समय गंगा और सिंधु नदी का पानी सर्प के समान वक्र गति से बहता है। गाड़ी के दोनों चक्र के मध्यभाग जितना चौड़ा और आधा चक्र डुबे जितना गहरा प्रवाह रह जाता है। उस पानी में कच्छ-मच्छ बहुत होते हैं। वे मनुष्य उन्हें पकड़-पकड़ कर नदी की रेत में गाड़कर अपने बिलों में भाग जाते हैं। शीत-ताप के योग से जब पक जाते हैं तो दूसरी बार

आकर उन्हें निकाल लेते हैं। लूटकर खा जाते हैं। पशु इनकी हड्डियों को चूस-चूस कर निर्वाह करेंगे। मृतक मनुष्यों की खोपड़ी में लोग जल पीयेंगे। उस काल के मनुष्य दीन-हीन, दुर्बल, दुर्गन्धित, रूग्ण, अपवित्र, नग्न, आचार-विचार से हीन और माता, भगिनी, पुत्री के साथ संगम करने वाले होते हैं। छः वर्ष की स्त्री संतान का प्रसव करती है। कुतरी और शूकरी के समान वे बहुत परिवार वाले और महाक्लेशमय होते हैं। धर्म पुण्य से हीन दुःख ही दुःख में अपनी सम्पूर्ण आयु पूर्ण कर नरक या तिर्यच गति में चले जाते हैं। जो मनुष्य दानपुण्य से रहित, णमोकार मंत्र के स्मरण से रहित तथा प्रत्याख्यान रहित होंगे वे ही इस आरे में उत्पन्न होंगे।

उत्सर्पिणी काल

उपर्युक्त अवसर्पिणी काल के छह आरे बीत जाने के बाद उत्सर्पिणी काल का आरम्भ होता है। इसमें भी छह आरे होते हैं। अन्तर यह है कि वे विपरीत क्रम से होते हैं। अर्थात् उत्सर्पिणी काल दुःषम-दुःषम से प्रारम्भ होकर सुषम-सुषम पर समाप्त होता है। उत्सर्पिणी काल के छः आरों का वर्णन है-

1. **दुःखमा-दुःखम-** उत्सर्पिणी काल का यह दुःखमा-दुःखम नामक पहला आरा इक्कीस हजार वर्ष का होता है। श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन से इसका आरम्भ होता है। इसमें सब रचनाएँ और स्थिति अवसर्पिणी काल के छठे आरे के समान जाननी चाहिये। विशेषता यह है कि इस काल में आयु और अवगाहना आदि क्रमशः बढ़ती जाती है।

2. **दुःखम-** उत्सर्पिणी काल का द्वितीय आरा दुःखम है। यह भी इक्कीस हजार वर्ष का है। यह भी श्रावण कृष्ण प्रतिपदा से आरम्भ होता है। इस आरे के आरम्भ होते ही पाँच प्रकार की वृद्धि सम्पूर्ण भरत क्षेत्र में होती है।

प्रथम आरे के इक्कीस हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शादि में अनन्तगुणा वृद्धि होकर दुःखम नामक दूसरा आरा लगेगा। उस समय पुष्कर संवर्तक नामक महामेघ भरत क्षेत्र प्रमाण आयाम विष्कम्भ वाला होकर आकाश में प्रकट होगा। यह घनघोर गर्जना करेगा।

गर्जना के पश्चात बिजलियाँ कड़केंगी और मेघ युग, मूसल, मुष्टि प्रमाण धाराओं से सर्वत्र एक रूप में सात दिन अनवरत बरसेगा। इस मेघ के

बरसने से पृथ्वी का अंगार के समान, तप्त चिनगारी के समान, तप्त राख के समान, तप्त कवेलू के समान भू-भाग शीतल बन जाएगा। इसके पश्चात भरत क्षेत्र प्रमाण क्षीर मेघ नामक महामेघ प्रकट होगा, गर्जना करेगा, बिजलियाँ कड़केंगी और वह मेघ युग-मूसल मुष्टि प्रमाण धाराओं से सात रात-दिन पर्यन्त अनवरत सर्वत्र एकरूप में बरसेगा, जिसके फलस्वरूप भरत क्षेत्र की भूमि में शुभ वर्ण, गंध, रस, स्पर्श पैदा होगा। इसके पश्चात घृतमेघ नामक महामेघ प्रकट होगा। गर्जना करेगा, बिजलियाँ कड़केंगी और सात दिन-रात तक युग-मूसल-मुष्टि प्रमाण धाराओं में सर्वत्र एक रूप में सात रात-दिन तक बरसेगा। इस प्रकार वह भरत क्षेत्र की भूमि में स्निग्धता उत्पन्न करेगा। फिर सात दिन पर्यन्त अमृत मेघ प्रादुर्भूत होगा। जिसके कारण भरत क्षेत्र में वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली, तृण, पर्वत, हरित, औषधि, प्रवाल आदि वनस्पतियाँ उत्पन्न होगी। अमृत मेघ के बाद रसमेघ प्रकट होगा।

पाँच प्रकार के तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधु रस को उत्पन्न करेगा। जिससे भरतक्षेत्र विविध प्रकार की वनस्पतियों से सुशोभित और सुखोपभोग्य बन जायेगा। तब तत्कालीन बिलवासी मनुष्य बिलों से निकलकर इस मनोरम दृश्य को देखेंगे तथा उन भव्य वनस्पतियों का उपभोग करेंगे, इससे वे हृष्ट-पुष्ट होंगे। शनैः शनैः फलाहार की प्रधानता से उनकी बुद्धि में सात्विकता की अभिवृद्धि होगी, जिससे वे मांसाहार और फलाहार का तुलनात्मक विचार करने में सक्षम होंगे। फलाहार से आयु बल-बुद्धि आदि की वृद्धि का अनुभव करते हुए उसे मुख्यता देंगे एवं मांसाहार को घृणित क्रूरता का परिणाम समझने लगेंगे। फलतः विकासोन्मुख बुद्धि वाले वे पारिवारिक सामाजिक रचना के रूप में कुछ मर्यादापूर्वक इस प्रकार एक-दूसरे को कहेंगे कि 'हे देवानुप्रियों! भरत क्षेत्र विविध वनस्पतियों से सुशोभित और सुखोपभोग्य हो गया है, अतएव आज से हममें से कोई भी मांसाहार नहीं करेगा। जो कोई मांसाहार करेगा उसकी छाया से भी हम दूर रहेंगे। इस प्रकार वे लोग मर्यादा स्थापित करेंगे। मर्यादा के अनुसार आचरण करते हुए वे भरत क्षेत्र में सुखपूर्वक विचरेंगे।

'इस आरे में भरत क्षेत्र का भूमि भाग बहु रसमय एवं रमणीय हो जायेगा। इस काल में छह संस्थान, छह संहनन, कई हाथ की अवगाहना, जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट सौ वर्ष से अधिक आयु भोग कर कोई जीव

नरकगामी यावत् कोई जीव स्वर्गगामी होंगे। किन्तु सिद्धि प्राप्त नहीं करेंगे।' इस रीति से वर्णादि की शुभ पर्यायों में अनन्त गुणी वृद्धि होती है। अवसर्पिणी काल के पाँचवें आरे के समान सब रचना और व्यवस्था स्थापित हो जाती है।

3. **दुःखम-सुखम**- उत्सर्पिणी काल के तीसरे आरे का नाम दुःखम-सुखम है। यह बयालीस हजार वर्ष कम एक क्रोडाक्रोडी सागरोपम का है। इसकी सब रचना अवसर्पिणी काल के चौथे आरे के समान है। इसके तीन वर्ष और साढ़े आठ माह व्यतीत होने के बाद प्रथम तीर्थकर का जन्म होता है। पहले कहे अनुसार इस आरे में 23 तीर्थकर, 11 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव, 9 प्रतिवासुदेव आदि होते हैं। पुद्गलों के वर्णादि शुभ पर्यायों में अनन्तगुणी वृद्धि होती है। शेष रचना अवसर्पिणी काल के चौथे आरे के समान होगी।

4. **सुखम-दुःखम**- उत्सर्पिणी काल के तीसरे आरे की समाप्ति पर दो क्रोडाक्रोडी सागरोपम का चौथा आरा सुखम-दुःखम नामक प्रारम्भ होता है। इसके 84 लाख पूर्व, 3 वर्ष और साढ़े आठ माह में चौबीसवें तीर्थकर मोक्ष चले जाते हैं। बारहवें चक्रवर्ती की आयु पूर्ण हो जाती है। करोड़ पूर्व का समय व्यतीत होने पर कल्पवृक्षों की उत्पत्ति होने लगती है। उनसे मनुष्यों और तिर्यचों की इच्छाएँ पूर्ण हो जाती है। असि, मसि, कृषि आदि धंधे बंद हो जाते हैं। युगल उत्पन्न होने लगते हैं। बादर अग्निकाय का विच्छेद हो जाता है। इस प्रकार इस आरे में सब मनुष्य अकर्मभूमिज बन जाते हैं। वर्णादि की शुभ पर्यायों में अनन्तगुणी वृद्धि होती है। शेष रचना अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे के समान होगी।

5. **सुखम**- उक्त चौथे आरे के बाद तीन क्रोडाक्रोडी सागरोपम का पाँचवाँ आरा लगता है। इसका नाम सुखम है, इसका वर्णन अवसर्पिणी काल के दूसरे आरे के समान समझना चाहिए। वर्णादि की शुभ पर्यायों में क्रमशः अनन्तगुणी वृद्धि होती जाती है।

6. **सुखम-सुखम**- सुखम आरे के बाद चार क्रोडाक्रोडी सागरोपम का छठा आरा लगता है। इसका नाम सुखम-सुखम है। इसका वर्णन अवसर्पिणी काल के प्रथम आरे के समान समझना चाहिये। वर्णादि की शुभ पर्यायों में क्रमशः अनन्तगुणी वृद्धि होती है। इस प्रकार दस क्रोडाक्रोडी सागरोपम का अवसर्पिणी काल और दस क्रोडाक्रोडी सागरोपम का उत्सर्पिणी काल होता

अवसर्पिणी काल की अपेक्षा		50. छः आरे का थोकड़ा				जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति - 2 वक्षस्कार	
क्र.	द्वार	1	2	3	4	5	6
1	आरे के नाम	सुखमा-सुखमा	सुखमा	सुखमा-दुःखमा	दुःखमा-सुखमा	दुःखमा	दुःखमा-दुःखमा
2	छः आरे की स्थिति	4 कोटाकोटी सागर	3 कोटाकोटी सागर	2 कोटाकोटी सागर	1 कोटाकोटी सागर में 42000 वर्ष कम	21000 वर्ष	21000 वर्ष
3	मानव की स्थिति	लगते 3 पल्यो. उतरते 2 पल्यो.	लगते 2 पल्योपम उतरते 1 पल्योपम	लगते 1 पल्योपम उतरते 1 करोड़ पूर्व	लगते 1 करोड़ पूर्व उतरते 100 वर्ष झांझरी	लगते 100 वर्ष झांझरी उतरते 20 वर्ष	लगते 20 वर्ष उतरते 16 वर्ष
4	मानव की अवगाहना	3 गाऊ (कोस)	2 गाऊ (कोस)	1 गाऊ	500 धनुष	7 हाथ	1 हाथ
5	पसलियाँ	256 पसलियाँ	128 पसलियाँ	64 पसलियाँ	32 पसलियाँ	16 पसलियाँ	8 पसलियाँ
6	जवानी	49 दिन	64 दिन	79 दिन	32 साल	16 साल	8 साल
7	काल	भोगकाल	भोगकाल	भोगकाल और धर्मकाल	धर्मकाल	धर्मकाल-पापकाल	महापाप
8	आहार की इच्छा	तीन दिन के अंतर से	दो दिन के अंतर से	एक दिन के अंतर से	प्रतिदिन 1 बार	प्रतिदिन अनेक बार	बार बार

क्र.	द्वार	1	2	3	4	5	6
9	कितना आहार	तुअर की दाल बराबर	बेर के बराबर	आँवले के बराबर	शरीर प्रमाण	अनियत	पूरे दिन
10	किसका	फल-फूल	फल/फूल	फल/फूल/अन्न	अन्नाहार	तुच्छाहार	मांसाहार
11	गति	देवगति/128	देवगति/126	देवगति 124 और 5 गति	5 गति	5/4 गति	नरक, तिर्यञ्च
12	वास-निवास	वनवास	वनवास	वन घर	नगरवास	नगरवास	बिलवास
13	संतति	सिंहवत्	सिंहवत्	सिंहवत्	गायवत्	गायवत्	कुतियावत्
14	संहनन	वज्रऋषभ नाराच	वज्रऋषभ नाराच	वज्रऋषभ नाराच	6 संहनन	छहों संहनन/अंत में एक	अंत का एक
15	संस्थान	समचतुरस्र	समचतुरस्र	समचतुरस्र	छहों संस्थान	छहों संस्थान/अंत में एक	अंत का एक
16	धरती की सरसता लगते उतरते	मिश्री जैसा मीठा शक्कर जैसा	शक्कर जैसा गुड़ जैसा	गुड़ जैसा उपजाऊ धरती	उपजाऊ धरती घटिया	घटिया कुम्भार के निबांड के राख जैसा	कुम्भार के निबांड के राख जैसा बंजर

सेवं भंते! सेवं भंते!



आशातना

आशातना शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है -

आ - सामस्त्येन शात्यन्ते अपध्वंस्यन्ते ज्ञानादिगुणाः याभि ताः
आशातनाः।

अर्थ- जिनका सेवन करने से ज्ञानादि गुण नष्ट हो जायें उन्हें आशातना कहते हैं अर्थात् सम्यग्दर्शनादि गुणों का घात करने वाली अविनय की क्रियाओं को आशातना कहते हैं।

“एवं धम्मस्स विणओ मूलं” कह कर शास्त्रकारों ने विनय का महत्व बतलाते हुए उसकी अनिवार्य आवश्यकता भी बतला दी है। धर्म का प्रासाद (महल) विनय की नींव पर खड़ा होता है इसीलिए विनय रहित क्रियाओं को आशातना (सम्यग्दर्शनादि गुणों का नाश करने वाली) कहना ठीक ही है। वे आशातनाएँ तैंतीस प्रकार की हैं। शैक्ष (नव दीक्षित) और छोटी दीक्षा वाले साधु-साध्वी को रत्नाधिक (दीक्षा में बड़े साधु साध्वियों) के साथ रहते हुए रत्नाधिक के प्रति विनय और बहुमान रख कर इन आशातनाओं का परिहार करना चाहिए जिससे विनय और धर्म की यथार्थ आराधना होती है और मनुष्य देवों के उत्तम ऐश्वर्य आदि से सम्पन्न होता है और मुमुक्षु अपने मुक्ति प्राप्ति रूप ध्येय के अधिकाधिक समीप पहुँचता है। इसका फल बतलाते हुए उत्तराध्ययन सूत्र के 31 वें अध्ययन में बतलाया है -

से ण अच्छइ मंडले

अर्थात्- वह संसार में परिभ्रमण नहीं करता है अपितु शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

‘आवश्यक’ सूत्र में दूसरे प्रकार से भी तैंतीस आशातनाएँ बतलाई हैं यथा-

‘अरिहंताणं आसायणाए, सिद्धाणं आसायणाए जाव सज्जाइए ण सज्जाइयं’ इन आशातनाओं का स्वरूप हारिभद्रीय आवश्यक सूत्र अथवा श्रमण सूत्र से जानना चाहिए।

“सम्यग् दर्शन आदि की घात करने वाली ये निम्न तैंतीस आशातनाएँ कही गई हैं”-

(1) शैक्ष (शिष्य तथा दीक्षा पर्याय में छोटा) रत्नाधिक (यानि ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप रत्नों में बड़े एवं दीक्षा पर्याय में बड़े साधु) के अविनय पूर्वक आगे-आगे चले तो शिष्य को आशातना लगती है। (2) शिष्य रत्नाधिक के बराबर चले तो शिष्य को आशातना लगती है। (3) शिष्य रत्नाधिक के बहुत पास चले तो। (4) शिष्य रत्नाधिक के आगे खड़ा रहे। (5) बराबरी में खड़ा रहे। (6) बहुत नजदीक चिपकता हुआ खड़ा रहे तो शिष्य को आशातना लगती है। (7) शिष्य रत्नाधिक के आगे बैठे। (8) बराबर बैठे। (9) बहुत नजदीक चिपकता हुआ बैठे तो शिष्य को आशातना लगती है। (10) शिष्य रत्नाधिक के साथ बाहर विचार भूमि यानि जंगल गया हो और कारणवशात् दोनों एक ही पात्र में जल ले गए हों, ऐसी अवस्था में यदि शिष्य रत्नाधिक से पहले आचमन यानि शौच करे। रत्नाधिक पीछे शौच करे तो (11) शिष्य रत्नाधिक के साथ बाहर विहार भूमि यानि जंगल गया हो वहाँ से वापिस लौट कर यदि शिष्य पहले ईर्यापथ सम्बन्धी आलोचना करे तो (12) कोई पुरुष ऐसा है जिसके साथ रत्नाधिक को पहले बातचीत करनी चाहिए। उसके साथ यदि शिष्य पहले बातचीत करे और रत्नाधिक पीछे बातचीत करे तो (13) रात्रि के समय अथवा विकाल यानि सन्ध्या के समय रत्नाधिक शिष्य को बुलाए कि हे आर्यो! कौन सोता है और कौन जागता है? ऐसा पूछने पर शिष्य जागते हुए भी रत्नाधिक के वचनों को न सुने यानि कुछ भी उत्तर न दे तो। (14) शिष्य अशन, पान, खादिम, स्वादिम गृहस्थ के घर से लाकर उसकी आलोचना यदि पहले अन्य शिष्यों के पास करे और पीछे रत्नाधिक के पास करे तो (15) शिष्य अशन, पान, खादिम, स्वादिम गृहस्थ के घर से लाकर उस आहार पानी को यदि पहले छोटे साधुओं को दिखलावे और रत्नाधिक को पीछे दिखलावे तो। (16) शिष्य अशन, पान, खादिम, स्वादिम गृहस्थ के घर से लाकर पहले शिष्य को एवं छोटे साधु को निमन्त्रित करे और रत्नाधिक को पीछे निमन्त्रित करे तो (17) शिष्य रत्नाधिक के साथ अशन, पान, खादिम, स्वादिम गृहस्थ के घर से लाकर रत्नाधिक को बिना पूछे ही जिसको चाहता है उसको वह आहार प्रचुर मात्रा में दे देता है तो। (18) शिष्य अशन, पान, खादिम, स्वादिम गृहस्थ के घर से लाकर रत्नाधिक के साथ आहार करते हुए यदि प्रचुर मात्रा में खट्टे रस वाले शाक आदि को, रसादि गुणों से प्रधान सरस, मनोज्ञ,

साधु संतों से बात करते समय ध्यान रखने योग्य बातें

ऐसा नहीं	ऐसा बोलिए
1. गुड मार्निंग म.सा.	1. मत्थण वंदामि म.सा.
2. म.सा. आपकी तबियत ठीक है।	2. आपके ज्ञान दर्शन चारित्र एवं संयमी स्वास्थ्य की सुख शान्ति।
3. हमारी गलती हुई हो तो माफ करना।	3. हे क्षमा श्रमण! दिवस सम्बन्धी अपराधों के लिए क्षमा याचना करते हैं।
4. आपकी विहार यात्रा ठीक रहे	4. आपश्री जी की विहार यात्रा (संयम यात्रा) निर्बाध रहे।
5. म.सा. अभी-अभी गोचरी के लिए निकले हैं।	5. म.सा. अभी-अभी गोचरी के लिए पधारे हैं।
6. म.सा. हमारे घर गोचरी चलो ना।	6. (ऐसा निमंत्रण स्थानक में नहीं देना) स्थानक के बाहर कह सकते हैं कि म.सा. हमारे घर गोचरी पानी के लाभ की कृपा करावें। म.सा. हमें भी आहार पानी का लाभ देवें।
7. आपके लिए चावल, दाल धोकर पानी रखा है।	7. चावल, दाल, बर्तन आदि धोया पानी इकट्ठा करके रखा हुआ है, कृपा करें।
8. म.सा. रोटी आदि और लो ना, हम तो फिर बना लेंगे।	8. म.सा. आपकी खपत हो तो कृपा करें। हमें आज ऊनोदरी तप करने का मौका मिलेगा। अभी अपने लिए नया आहारादि नहीं बनायेंगे।
9. म.सा. यह सब्जी बहुत टेस्टी है।	9. म.सा. यह आपके स्वास्थ्य के लिए अनुकूल रहेगी।
10. म.सा. पधारेंगे तभी पारणा करूंगी।	10. (भावना भाना) वह क्षण धन्य होगा, जब आहारादि बहराकर पारणा करूँ।
11. म.सा. हमारे यहाँ गोचरी में रोज पधारना।	11. म.सा. आपकी अनुकूलता अनुसार कृपा दृष्टि बनाये रखना।
12. म.सा. पानी पी रहे हैं।	12. म.सा. धोवन आरोग (पी) रहे हैं।

13. म.सा. रोटी खा रहे हैं।	13. म.सा. आहार कर रहे हैं।
14. म.सा. आपस में बात कर रहे हैं।	14. म.सा. आपस में धर्मचर्चा कर रहे हैं।
15. म.सा. पढ़ रहे हैं।	15. म.सा. स्वाध्याय कर रहे हैं।
16. म.सा. यहाँ बैठो।	16. म.सा. यहाँ विराजिए।
17. म.सा. कुछ बात करो ना।	17. म.सा. कुछ फरमाने की कृपा कीजिए।
18. म.सा. पढ़ाओगे?	18. म.सा. आपकी अनुकूलता हो तो सिखाने की कृपा करावें।
19. आपने हमें पढ़ाया उसके लिए धन्यवाद।	19. म.सा. आपने ज्ञान दान देकर बड़ी कृपा की। ऐसी कृपा दृष्टि सदैव बनी रहे।
20. आप कितने अच्छे हैं।	20. आपकी संयम साधना कितनी श्रेष्ठ है।
21. म.सा. आपका अच्छा साथ मिला।	21. आप संयमी आत्माओं के सुयोग मिलने से हम धन्य हो गए।
22. म.सा. हमारे मकान में रुक जाओ।	22. म.सा. हमें शय्यात्तर के लाभ की कृपा करावें।
23. म.सा. यह मकान बहुत अच्छा है।	23. म.सा. यह मकान आपके लिए साताकारी है। अनुकूल है।
24. म.सा. आप इस स्थान पर पानी आदि फेंक सकते हैं।	24. म.सा. आप इस स्थान पर पानी आदि परठ सकते हैं।
25. म.सा. इस पाटे की हमारी आज्ञा है।	25. म.सा. इस पाटे की हमारी अनुज्ञा है।
26. गुरुदेव पाट पर बैठे हुए हैं।	26. गुरुदेव पाट पर विराजे हुए हैं।
27. गुरुदेव प्रवचन बोलते हैं।	27. गुरुदेव प्रवचन फरमाते हैं।
28. म.सा. आपश्री ने बहुत अच्छा पढ़ाया, समझ में आ गया है।	28. अहो पू. म.सा.। आपने बड़ी कृपा करके हमें ज्ञान दान प्रदान किया।
29. म.सा. कपड़े समेट रहे हैं।	29. म.सा. कपड़ों का प्रतिलेखन (पलेवन) कर रहे हैं।
30. आज हमारे यहाँ आये। बहुत खुशी हुई।	30. आज हमारे अहोभाग्य हैं, जो आप हमारे द्वार पधारे।
31. हमने म. सा. को एक गाँव से दूसरे गाँव जाते हुए देखा।	31. हमने म.सा. को विहार करते हुए देखा।
32. आज प्रवचन में अच्छा टाइम पास हुआ।	32. आज प्रवचन में बहुत आनंद आया। हमारे भाग्य जगो जो संसार के स्वरूप को समझने का अवसर मिला।